हिन्दू-धर्म के ज्ञान-मय क्रिया-पक्ष की शोध-पूर्ण प्रस्तुति

'कौल-कल्पतरु'

चण्डी

(सं० १९९९ वि०-सन् १९४२ ई० से प्रकाशित)

मन्त्र-कल्पतरु

(४)

ॐ ह्रीं

निराकार तेज के 'विन्दु' से 'मातृका' की उत्पत्ति होती है। 'मातृका' में 'स्वर' और 'व्यञ्जन' सब मिलाकर ५१ हैं। ये मातृकाएँ सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि की रश्मियों में व्याप्त हैं और आकाश के वातावरण को पार करती हुई पृथ्वी पर गिरकर अनेक कौतूहल उत्पन्न करती हैं। ये शरीर के प्रत्येक भाग में व्याप्त हैं।

मानव के प्रत्येक अङ्ग का रोम - रोम एक-एक ब्रह्माण्ड माना गया है, जिसकी पृथक् - पृथक् मातृकाएँ हैं। इनके ही साक्षात्कार को स्वयं का जानना कहते हैं। ग्रन्थों में वर्णित देवता तथा उनके लोक—सभी मानव-शरीर में उपस्थित हैं। उन्हें जानना, अपनी आत्मा का साक्षात्कार कर, उसका सम्बन्ध वाह्य प्रकाश से कर देना—सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना ही—मनुष्य का ध्येय है।

यह प्रति ४-५० रु० / वार्षिक मूल्य ५०-००

तुझे रिझाऊँ

श्री दुर्गाकुमारी, पीपला, जयपुर (राजस्थान)

कोटि-कोटि बालक माँ, तेरे मन्त्र-यन्त्र से तुझे रिझाते ।
कोटि-कोटि बालक, विधि-सम्मत तेरी दिव्य प्रार्थना गाते ।।
कर विधि-वत् आह्वान, प्रेम से कोई तेरा ध्यान लगाते ।
गाते चरित अनेकों कोई, मुद्राएँ भी कई बनाते ।।

कुछ भी तो मैं नहीं जानती, मैं क्या करूँ तुझे जो पाऊँ ?
तू ही मुझको सिखा न दे, माँ ! क्या करके मैं तुझे रिझाऊँ ?१

भाग्यवान हैं बन्धु अनेकों, जो गुरु-पथ से तुझको पाते ।
भाग्यवान हैं कई, हवन या यज्ञ आदि से तुझे रिझाते ।।
भाग्यवान हैं कई, गोद में तेरी मचल - मचल चढ़ जाते ।
भाग्यवान हैं कई, दान औ' पुण्य अनेकों हैं करवाते ।।

मुझको तूने दिया द्रव्य कब, फिर मैं कैसे यज्ञ रचाऊँ ?
तू ही मुझको सिखा न दे, माँ ! क्या करके मैं तुझे रिझाऊँ ?२

देव-वाणि संस्कृत में तेरे स्तोत्र अनेकों पण्डित गाते ।
सम्भव है, वे उस भाषा में अपना दुःख हैं तुझे सुनाते ।।
माँ, सच्ची कह, क्या संस्कृत ही भाषा केवल तुझे रिझाती ?
मेरी भोली-भाली भाषा क्या तू समझ नहीं है पाती ?

तू ही समझा मुझे न दे, माँ ! किस भाषा में तुझे बुलाऊँ ?
तू ही मुझको सिखा न दे, माँ ! क्या करके मैं तुझे रिझाऊँ ?३

मैंने तो यह देखा है, माँ ! माँ को प्रिय बच्चे की बोली ।
और साथ ही देखा, मेरी माँ ! तू मुझसे ज्यादा भोली ।।
जब-जब आडम्बर करती हूँ, तब-तब छिपती तू लुक-लुक कर ।
'मेरी मय्यो' कहते ही औ, मुझे उठा लेती तू झुक कर ! ।।

उतरूँ कभी न गोदी से मैं, क्या ऐसी मैं युक्ति बनाऊँ ?
तू ही मुझको सिखा न दे, माँ ! क्या करके मैं तुझे रिझाऊँ ?४

(शेष आवरण - पृष्ठ ३ पर)

'कौल-कल्पतरु' चण्डी

वष ५०] पौष, 'तारण' सम्वत् २०४८ वि० : जनवरी, १९९२ [संख्या १०

१ प्रार्थना : 'कौलाचार्य' पं० नथमल दाधीच, लक्ष्मणगढ़, सीकर, राजस्थान १
२ 'सप्तशती'-विषयक शङ्का-समाधान : श्री घोरानन्दनाथ, पञ्जाबी मार्केट, बरेली (उ. प्र.) २
३ मुम्बई की प्रख्यात मुम्बा देवी : पं० राकेशकुमार दुबे, कोलाबा, मुम्बई ६
४ श्रीगङ्गा जी के विभिन्न रूप : पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र, साउथ मलाका, प्रयाग ९
५ गङ्गा जी का आध्यात्मिक स्वरूप : ब्रह्मीभूत स्वामी दिव्यानन्द जी सरस्वती १३
६ 'चण्डी'-कवच का महत्त्व : पं० रामकृष्ण तिवारी, सैदाबाद, प्रयाग १६

मन्त्र-कल्पतरु

['चण्डी' की 'स्वर्ण-जयन्ती' के उपलक्ष्य में प्रकाशित विशेष लेख-माला । चैत्र, आषाढ़, भाद्रपद २०४८ वि०–अप्रैल,जुलाई, सितम्बर में प्रकाशित २५ निबन्धों (पृष्ठ ५६) के आगे का अंश । इसकी पृष्ठ-संख्या अलग है ।]

७ ध्वनि-तरङ्गों का रहस्य : ब्रह्मीभूत प. पू. स्वामी शाश्वतानन्द जी सरस्वती ५७
८ समस्त शास्त्रों के सार-स्वरूप मन्त्र-शास्त्र का वर्णन : स्वामी शिवानन्द जी ६३
९ 'मन्त्र-साधना' के प्रङ्ग : पण्डित श्रीकान्त विहारी मिश्र ६८
१० 'मन्त्र-सिद्धि' के लक्षण : ब्रह्मीभूत प. पू. स्वामी शाश्वतानन्द जी सरस्वती ७०
११ 'मन्त्र-जप' अर्थात् ईश्वर की भावना : पण्डित श्रीकान्त बिहारी मिश्र ७२

प्रार्थना

'कौलाचार्य' पं० नथमल जी दाधीच, श्री भुवनेश्वरी महा-शक्ति-पीठ, लक्ष्मणगढ़ (राजस्थान)

मेरी लाज बचाओ !
लाज बचाओ, पार लगाओ, सिंह चढ़ी तुम आओ ।
भव - सागर में डोलत नैया, आओ डांड समाओ ।।
तुझ बिन कौन सहारा मेरा, किश्ती पार लगाओ ।
षड-रिपु असुर चढ़े तन ऊपर, दानव-दलनी आओ ।।
मैं पामर अति नीच, मात ! मेरे दुर्गुण चित्त न ल्याओ ।
अधम - उधारण नाम तिहारो, यूं कांई नाम गँवाओ ।।
पूत कपूत सपूत मैं तेरो, अन्तर उर - बिच ल्याओ ।
कर रोशन इस मन-मन्दिर को, नथमल उर-बिच आओ ।।

'सप्तशती'-विषयक शंका-समाधान

श्री घोरानन्द नाथ, ब्रज जनरल स्टोर, १४३ पञ्जाबी मार्केट, बरेली (उ० प्र०)

'श्रीदुर्गा-सप्तशती' के सम्बन्ध में लोग प्रायः अनेकानेक प्रकार की शङ्काएँ करते देखे जाते हैं। यथा—श्लोक-संख्या ७०० है, तो '**उवाच**' आदि या '**अर्ध-श्लोक**' किस प्रकार से संख्या-पूर्ति के लिए श्लोक हो गए ? कुछ कहते हैं कि पहले श्लोक-संख्या ६०० थी। 'रहस्य - त्रयं' भी 'सप्तशती' के अध्यायों के अन्तर्गत थे तथा एक पुस्तक जबलपुर से प्रकाशित हुई है, जिसमें ७०० श्लोक पूरे दिए गए हैं और '**उवाच**' आदि श्लोक नहीं माने गए हैं तथा वह '**उत्तर मार्कण्डेय पुराण**' नामक ग्रन्थ पर आधारित बताई गई है ! मैंने अनेक स्थानों पर अन्वेषण किया, विज्ञ-जनों से भी वार्तालाप किया। अनेक ग्रन्थों का अवलोकन किया, परन्तु '**उत्तर मार्कण्डेय**' नामक किसी पुराण का पता नहीं लगा। यह ग्रन्थ पुराणों या उप-पुराणों की विषय-सूची में देखने पर कहीं भी दृष्टि-गत नहीं होता।

प्रचलित 'सप्तशती' तो 'मार्कण्डेय पुराण' से ली गई है, जो प्रसिद्ध है और उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त प्रचलित 'सप्तशती' के श्लोकों की संख्या का आधार-भूत ग्रन्थ '**कात्यायनी तन्त्र**' है, जिसके अनुसार यह क्रम-बद्ध हुई। यथा—

मार्कण्डेय उवाचैकः, सावर्ण्याद्यास्ततः परम्।
श्लोक-मन्त्राः सप्त-दश, अर्ध - श्लोकात्मकस्ततः। एकोन - विंशदेवं स्युर्वैश्योक्तिर्विंशतिस्तथा॥
पुनरर्धं पुनः श्लोकं, त्रयमर्धं पुनर्भवेत्। पञ्च-विंशति-संख्या स्याद्, राजा षड् - विंशतिस्तथा॥
अर्धं - श्लोकात्मकं मन्त्र - द्वयमर्धं पुनर्भवेत्। एकोन - त्रिंशदेवं तु, मन्त्र - संख्याः प्रकीर्त्तिताः॥
पुनरर्धं पुनः श्लोक - त्रयमर्धं पुनर्भवेत्। मार्कण्डेयः पुनश्चार्ध - श्लोकः श्लोकात्मकः पुनः॥
अर्ध-श्लोकात्मको मन्त्रो, राजाऽर्ध-श्लोक-मन्त्रकः। मन्त्राश्चत्वारिंशदेव, श्लोक-मन्त्र-चतुष्टयम्॥
पुनरर्धमृषिश्चार्ध - श्लोक - मन्त्राः पुनर्दश। पुनरर्धं पुना राजा, एकोना - षष्टिरुच्यते॥
पुनरर्धं पुनः श्लोकः, पुनरर्धं पुना ऋषिः। पुनरर्धं पुनः श्लोकाः, षण्मन्त्राः पुनरर्धकाः॥
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः। इत्येव पाठो मन्त्राणामेक - सप्ततिरुच्यते॥
ब्रह्मार्ध-श्लोक-मन्त्रोऽथ, श्लोक-मन्त्रास्त्रयोदश। अर्धश्लोकः पुनः श्लोकः, ऋषिः श्लोकास्तु पञ्च वै॥
पुनरर्धं तु मन्त्राणां, सपश्च नवतिः स्मृताः। भगवानर्ध-मन्त्रौ द्वौ, ऋषिः श्लोकार्धकं पुनः॥
श्लोकः पुना ऋषिः श्लोक-द्वयं मन्त्र-द्वयं भवेत्। श्लोकानामष्ट-सप्तत्या, चतुर्थिरधिकं शतम्॥१
अध्यायादावेव ऋषिरुवाचेति सकृन्मनुः। अष्ट - षष्टिमिताः श्लोकास्तावन्तो मनवो मताः॥
एकोन-सप्ततिः सर्वेऽध्याये मन्त्रा द्वितीयके॥२
आदावृषिरुवाचैकं, पञ्च-विंशत् ततः परम्। निहन्यमानाद्याः श्लोका, मुख - रागाकुलाक्षराः॥
इत्यन्ता देव्युवाचैको, गर्ज-गर्जेति चापरः। श्लोको - ऋषिवरुवाचेति, पुनश्चश्लोक - पञ्चकम्॥
चतुश्चत्वारिंशदेवं, सर्वे मन्त्रास्तृतीयके॥३
आदावृषिरुवाचेति, शक्राद्याः श्लोक-मन्त्रकाः ! षड्-विंशास्तु ऋषिः श्लोक-द्वयं देवी ततः परम्॥
त्रियतां त्रिदशाः सर्वे, यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम्। इत्यर्ध-श्लोक-मन्त्रोऽथ, देवा ऊचुस्ततः परम्॥

भगवत्या कृतं सर्वमित्यर्ध - श्लोक - मन्त्रकः । यदयं निहताद्यं च, श्लोक - मन्त्र - त्रयं भवेत् ।।
ऋषि-श्लोकास्तु चत्वारो, मनवः परिकीर्त्तिताः ।।४

षट्-त्रिंशच्छ्लोककेऽध्याये, चत्वारिंशद् द्व्याधिकम् ।
षट्-सप्तति-श्लोक-युक्तेऽध्याये मन्त्रास्तु पञ्चमे । एकोन - त्रिंशदधिकं, शतं कात्यायनी - मते ।।
आदौ ऋषिरुवाचेति, पुरा शुम्भादयश्च षट् । श्लोक-मन्त्रास्ततो देवा, ऊचुश्चैवाष्टमो मनुः ।।
नमो देव्यादिकाः श्लोकाः, पञ्च मन्त्राः प्रकीर्त्तिताः । त्रयोदशैव मन्त्रास्तु, या देवीत्यादयोऽपि च ।।
एक-विंशतिकाः श्लोका, भ्रान्त्यन्तास्तेषु मन्त्रकाः । प्रति-श्लोके त्रयो मन्त्रा, ज्ञेयास्ते च त्रि-षष्टिकाः ।।
या देवी सर्व - भूतेषु, विष्णु - मायेति शब्दिता । नमस्तस्यै इति प्रोक्तो, विंशत्यक्षरको मनुः ।।
नमस्तस्यै इति प्रोक्तो, द्वितीयश्चतुरक्षरः । अष्टाक्षरस्तृतीयोऽपि, नमस्तस्यै नमो नमः ।।
एवं द्वा-विंशति-श्लोके, ज्ञेयं मन्त्र-त्रयं बुधैः । पुनः श्लोकात्मको मन्त्रस्त्रि-मन्त्रः श्लोककः पुनः ।।
त्रयो - विंशच्छ्लोककेषु, मन्त्रा वै सप्त - षष्टिकाः । पूर्वैस्त्रयोदशैर्मन्त्रैः, सप्तशीतिरुदाहृता ।।
स्तुता सुरैरिति श्लोक-द्वयं चैव पुना ऋषिः । पुनः सप्तदश-श्लोका, ऋषिः श्लोक - त्रयं ततः ।।
दूतश्चैव नव श्लोका, ऋषि रेकोऽम्बिका ततः । चतुः-श्लोकी पुनर्दूतश्चतुः-श्लोकी पुनः शिवा ।।
श्लोक-द्वयं मिलित्वा तु, चत्वारिंशन्नवाधिकम् । अशीत्याऽपि च संयोग, एकोन-त्रिंशताऽधिकम् ।।५
विंशति-श्लोक-संयुक्ते, षष्ठेऽध्याये प्रकीर्त्तिता । सर्वे श्लोका मन्त्र स्याच्च, देव्येकाऽथ ऋषि-त्रयम् ।।
चतुर्विंशति - मन्त्राणामित्येवं परिकीर्त्तितम् ।।६

पञ्च-विंशच्छ्लोक-युक्तेऽध्याये मन्त्रास्तु सप्तमे ।
सर्वे मन्त्राः श्लोक-रूपा, ऋष्युवाच-द्वयं ततः । सप्त - विंशतिरेवं तु, मन्त्र - संख्या प्रकीर्त्तिता ।।७
सार्धैक-षष्टि-श्लोकाढ्येऽष्टमेऽध्याये प्रकीर्त्तिताः । एक-षष्टि-श्लोक-मन्त्रा, अन्तेऽर्ध-श्लोक-मन्त्रकः ।।
आदावेक ऋषिश्चैव, त्रि-षष्टिर्मन्त्र - सन्ततिः ।।८

एकोन-चत्वारिंशद्भिः, श्लोकैर्युक्ते समीरिताः । अध्याये नवमे मन्त्रास्तावन्तोऽथ मनु - द्वयम् ।।
राजा ऋषिश्चेति चैक-चत्वारिंशन्मनुस्त्वयम् ।।९

सार्ध-सप्तान्वितैर्विंशच्छ्लोकैस्तु दशमेऽन्विते । सप्त-विंशति-मन्त्रास्तु, श्लोक-रूपास्ततोऽन्तिमः ।।
अर्ध-श्लोकात्मको मन्त्र, ऋष्युवाच-द्वयं तथा । देव्युवाच - द्वयं चैव, द्वा - त्रिंशन्मन्त्र - संग्रहः ।।१०
श्लोकानां सार्ध-पञ्चाशज्, ज्ञेयमेकादशे स्फुटं । पञ्चशच्छ्लोक-मन्त्रास्तदन्तेऽर्ध-श्लोक-मन्त्रकः ।।
शाकम्भरीति विख्यातिं, तदा यास्याम्यहं भुवि । एषोऽर्ध - मन्त्र इत्याहुः, केचिदत्र विचक्षणाः ।।
देवो - द्वयमृषिश्चैको, देवा एकमितीरितम् । पञ्चाधिकं तु पञ्चाशन्मन्त्रा ज्ञेयाः परिस्फुटम् ।।११
अष्ट-त्रिंशच्छ्लोक-युक्तेऽप्यध्याये द्वादशात्मके । चत्वारिंशच्च एकश्च, मन्त्रास्तत्राहुति - द्वयम् ।।
अर्ध-श्लोकात्मकं श्लोकाः, सप्त-त्रिंशन्मिता ऋषिः । देव्युवाचेति चैवैकमेवं संख्या स्फुरोदिता ।।१२
त्रयोदशे सार्ध सप्त - दश - श्लोकाः प्रकीर्त्तिताः । ऋषिरुवाचेत्यारभ्य भोग - स्वर्गापवर्गदा ।।
इत्यन्ताः पञ्च मन्त्रास्ते, मार्कण्डेयस्ततः परम् । इति तस्य वचः श्रुत्वेत्यर्ध - मन्त्र प्रकीर्त्तितः ।।

श्लोक-मन्त्रास्ततो ज्ञेयाः, पञ्चैवाथार्ध-मन्त्रकम् । देव्युवाचेति मन्त्रोऽयं, ततः श्लोकस्तु मन्त्रकः ।।
मार्कण्डेयस्ततो मन्त्रः, श्लोकौ मन्त्र-द्वयं ततः । ततो देवी-षडर्धानि, सप्त-मन्त्राः प्रकीर्त्तिताः ।।
मार्कण्डेयस्ततः पश्चाद्, द्वयं मन्त्र-द्वयं स्मृतम् । आवृत्त्या त्वधिको मन्त्रः, सार्वार्णिर्भविता मनुः ।।
एकोन-त्रिंशत्-संख्याका, मन्त्रा अत्र स्मृता बुधैः ।।१३

'कात्यायनी तन्त्र' के अनुसार 'उवाच', 'अर्ध-श्लोक' इत्यादि को प्रचलित 'सप्तशती' में लिपि-बद्ध किया गया है। अतः उसके प्रमाण से इस सम्बन्ध में की जानेवाली शङ्का निर्मूल हो जाती है। इस पर भी यदि किसी को शङ्का हो, तो उसका समाधान निम्न प्रकार है—

दुर्गा-पाठस्य नव-नामानि तल्लक्षणानि च । रहस्योक्तानि नामानि, ब्रह्मोक्तानि वदामि ते ।।

दुर्गा-पाठ के गुप्त नौ नामों तथा उनके लक्षणों को, जिन्हें ब्रह्मा जी ने कहा था, मैं तुम्हें बता रहा हूँ।

महा-विद्या महा-तन्त्री, चण्डी सप्तशतीति च । मृत-सञ्जीवनी नाम, पञ्चमं परिकीर्त्तितम् ।।
षष्ठं चैव महा-चण्डी, सप्तमं रूप-दीपिका । अष्टमं तु चतुः-षष्टि - योगिनी नवमी परा ।।

१ महा - विद्या, २ महा-तन्त्री, ३ चण्डी, ४ सप्तशती, ५ मृत - सञ्जीवनी, ६ महा - चण्डी, ७ रूप-दीपिका, ८ चतुः-षष्टि-योगिनी, ९ परा-चण्डी।

आद्य-द्वितीय-तृतीय - चरितानुक्रमेण च ।

आद्य, द्वितीय, तृतीय चरितवाले क्रम को 'महा-विद्या' कहते हैं (आज-कल इसी क्रम से 'चण्डी-पाठ' प्रचलित है तथा पुस्तकें भी इसी क्रम से मुद्रित हैं।)

आद्यन्त-मध्य-चरितं, महा-तन्त्रमितीरितम् ।

आद्य, अन्त्य तथा मध्य चरितवाले क्रम से चण्डी-पाठ को 'महा-तन्त्री' कहते हैं।

आदि-मध्यान्त-चारित्र-क्रमाच्चण्डी महा-मनुः ।

आदि, मध्य तथा अन्त्य चरितानुक्रम से चण्डी-पाठ को 'चण्डी' कहते हैं।

मध्यमाद्यन्त - चारित्र - क्रमात् सप्तशतीति च ।

मध्य, आद्य तथा अन्त्य चरितानुक्रम को 'सप्तशती' कहते हैं।

इत्यादि-मध्य-चारित्रान्मृत - सञ्जीवनी स्मृता ।

अन्त, आदि तथा मध्य चरितानुक्रम को 'मृत-सञ्जीवनी' कहते हैं।

अन्त्य-मध्यादि-चारित्रान्महा-चण्डीति कथ्यते ।

अन्त्य, मध्य तथा आद्य चरितानुक्रम को 'महा-चण्डी' कहते हैं।

रूपं देहीति संयोज्य, नवार्ण-मनुना सह सम्पुटत्वेन संयोज्य, प्रति - श्लोकं जपेत् तथा । रूप-चण्डीति सा प्रोक्ता सर्वाभीष्ट-फल-प्रदा ।।

'रूपं देहि' श्लोक को नवार्ण मन्त्र के साथ संयुक्त करके तथा प्रत्येक श्लोकों के साथ सम्पुट करके जप करने को 'रूप-चण्डी' कहते हैं। यह सभा अभीष्टों को देनेवाली है।

योगिनीनां चतुः-षष्टि-योगात् सप्तशती-मनोः । चतुः-षष्टीति सा प्रोक्ता योग-सिद्धि-प्रदायिनी ।।

सप्तशती के मन्त्रों से चौंसठ योगिनियों का सम्बन्ध होने से 'चतुःषष्ठी' कहते हैं। यह योग-सिद्धि प्रदान करनेवाली है।

परा-वीज-समायोगात्, परा - चण्डीति कथ्यते ।

परा-वीज के साथ संयुक्त होने के कारण **'महा-विद्या'** कहते हैं ।

एवं नवानां भेदानां, नामानि च पृथक्-पृथक् ।

इस प्रकार 'दुर्गा-सप्तशती' के नौ भेदों के पृथक्-पृथक् नाम हैं ।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'देवी-माहात्म्य' के नौ नाम हैं, जिनमें से चौथा नाम **'सप्तशती'** है । सप्त = ७ + शत = १०० = ७०० । इसका यह आशय कदापि नहीं है कि ७०० श्लोक हों । यह एक संयोग ही है कि वर्तमान समय में **'सप्तशती'** नाम ही अधिक प्रचलित है । नौ नामों वाली 'चण्डी' के विवरण पर विचार करने से ७०० श्लोकों की शङ्का एकदम निर्मूल हो जाती है ।

'आद्य-मध्य-अन्त्य' चरितानुक्रम से पहला **'महा- विद्या'** और दूसरा **'चण्डी'**--ये दो ही नाम सिद्ध होते हैं । प्रचलित **'सप्तशती'** नाम चौथा है । 'सप्तशती' का क्रम 'मध्य-आद्य-अन्त्य चरित' बताया गया है । इन क्रमों में श्लोक-संख्या का विचार नहीं है, केवल **'चरित'** का ही क्रम निर्धारित किया गया है । आज-कल प्रायः सभी मुद्रित पुस्तकें **'सप्तशती'** नाम से प्रचलित हैं, किन्तु उक्त **'चरितानुक्रम'** के अनुसार नाम **'महा-विद्या'** या **'चण्डी'** ही होना चाहिए क्योंकि इन दो नामों वाले देवी - माहात्म्य के चरितों का क्रम ही मुद्रित पुस्तकों में मिलता है । अतः शास्त्रोक्त आज्ञा के अनुसार **'सप्तशती'** नाम ठीक नहीं है ।

जहाँ तक प्रस्तुत चण्डी-पाठ की श्लोक-संख्या, अर्ध-श्लोक, उवाचादि से सम्बन्धित शङ्काएँ हैं और ६०० श्लोक थे या पूरे ७०० अथवा अन्य बातें—ये सब वास्तव में निरर्थक हैं । **'कात्यायनी तन्त्र'** पर ध्यान देने से तथा मूल 'मार्कण्डेय पुराण' को देखने से उक्त सभी शङ्काएँ दूर हो जाती हैं ।

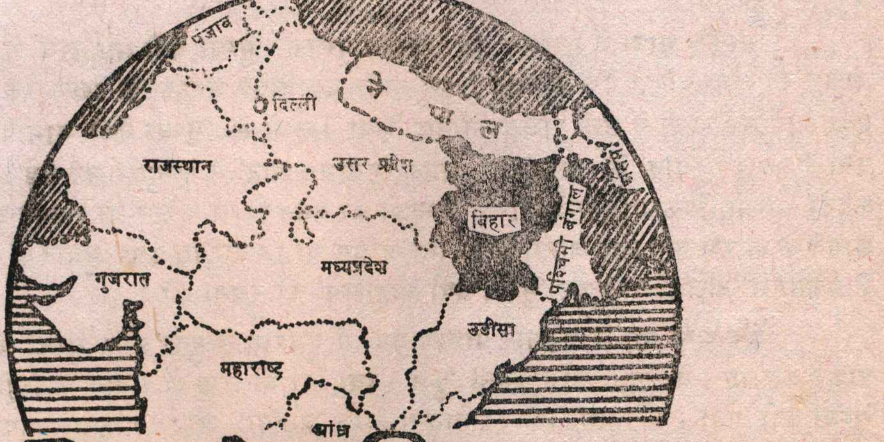

बिहार में शक्ति-साधना

दो भागों में । मूल्य १४-०० रु० मात्र ।

मुम्बई की प्रख्यात मुम्बा देवी

● **पं० राकेशकुमार दुबे, २१६५-ए, नारायण बिल्डिङ्ग, कोलाबा, मुम्बई (महा-राष्ट्र)—४०००০५**

मुम्बई जैसे उत्सव-धर्मी नगर में '**मुम्बा देवी**' का महत्त्व यहाँ के जन-जीवन की गहरी आस्था से सम्बद्ध है। '**मुम्बा देवी**' अत्यन्त प्राचीन हैं—इतनी कि उनकी पहले-पहल उपस्थिति के सम्बन्ध में इतिहास-कारों में मतैक्य नहीं है। मुम्बई के निवासी हिन्दुओं में तो '**मुम्बा देवी**' के प्रति अत्यधिक श्रद्धा है ही, भारत के अन्य प्रदेशों से आकर वहाँ रहनेवाले गुजरातियों, दक्षिण भारतीयों और उत्तर-भारतीयों में भी इन देवी के प्रति अपार श्रद्धा है। प्रतिदिन हजारों लोग देवी के दर्शनार्थ आते हैं, किन्तु '**मुम्बा देवी**' की स्थापना से सम्बद्ध बातों को बहुत ही कम लोग जानते हैं। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि भारत का यह महा-नगर लगभग चार सौ वर्ष पहले एक छोटा-सा गाँव था। आज भले ही मुम्बई कांक्रीट का एक विशाल महा-नगर बन चुका है, किन्तु प्रारम्भ में यह मात्र मछुवारों की एक छोटी-सी बस्ती के ही रूप में था।

'**मुम्बा देवी**' का मन्दिर बहुत ही पुराना है। इस स्थान में मन्दिर का निर्माण पहले-पहल सन् १७३७ में हुआ। इससे पूर्व यह मन्दिर '**बोरी-बन्दर**' के निकट स्थित था। '**मुम्बा देवी**' को नगर-देवी, अधि-देवी तथा प्रधान देवी के रूप में मान्यता प्राप्त है। इनकी स्थापना के सम्बन्ध में ऐतिहासिक तथ्य 'गजेटियर आफ बाम्बे सिटी एण्ड आईलैण्ड' में कई स्थलों पर उल्लिखित है। इसके अतिरिक्त मन्दिर की स्थापना तथा '**मुम्बा देवी**' के नामकरण को लेकर अनेक किम्वदन्तियाँ भी प्रचलित हैं। तथापि '**मुम्बा देवी**' की उत्पत्ति कहाँ से हुई, इस विषय में कोई कुछ नहीं जानता। सर्वाधिक प्रचलित किम्वदन्ती के अनुसार देवी की इस मूर्ति की पूजा लङ्काधीश 'रावण' के मामा 'मारीच' ने की थी। फलतः लोग इसे '**मामा की देवी**' कहने लगे। कालान्तर में इसी नाम का अपभ्रंश-रूप '**मुम्बा देवी**' प्रचलित हो गया।

संस्कृत भाषा में लिखित एक प्राचीन पुस्तक '**मुम्बा देवी माहात्म्य**' में 'मुबारक' नामक एक राक्षस की कथा वर्णित है। भगवान् विष्णु और देवाधिदेव शङ्कर के प्रखर तेज से देवी का आविर्भाव हुआ और उसी देवी ने उक्त राक्षस का वध किया। तभी से '**मुम्बा देवी**' नाम पड़ा। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस स्थान के तत्कालीन शासक 'मुबारक शाह' ने हिन्दुओं पर बड़े अत्याचार किए थे। वह कट्टर साम्प्रदायिक भावना के कारण हिन्दुओं का दमन किया करता था। अपने दुर्व्यवहार तथा निरंकुश शासन के कारण वह हिन्दू-जनता में अत्यन्त अप्रिय था। कदाचित् इसी 'मुबारक' को उक्त संस्कृत-रचना के प्रणेता ने 'राक्षस' मान कर '**मुम्बा देवी माहात्म्य**' की रचना की।

एक अन्य मत के अनुसार पाषाण-युग में गुजरात से कुछ लोग मुम्बई के इस छोटे-से द्वीप पर आकर बस गए। वे अपने साथ अपनी '**कुल-देवी**' को भी लाए थे। बाद में इन्हीं कुल-देवी का नाम '**मुम्बा देवी**' पड़ा। इतिहासकारों का मानना है कि 'हड़प्पा' और 'मोहन-जोदड़ो' संस्कृति में लोग '**भू-देवी**' के रूप में माँ की पूजा करते थे। '**श्री चण्डी**' (श्री दुर्गा सप्तशती) के ११ वें अध्याय के चौथे श्लोक में कहा गया है—'**मही-स्वरूपेण यतः स्थिताऽसि**' अर्थात् पृथ्वी के समान आप यहाँ स्थित हैं ये माता ही सबकी आधार-भूता हैं।

'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के समय **'मुम्बई'** अंग्रेजों के अधीन हो गई। उस समय यह मन्दिर नगर के वर्तमान मुख्य रेल्वे स्टेशन 'विक्टोरिया टर्मिनस' (वी. टी.) के स्थान पर था। इसके सामने एक बड़ा तालाब भी था, जिसके आस - पास के क्षेत्र को **'फाँसी गेट'** कहा जाता था क्योंकि मुम्बई गाँव के अपराधियों को यहीं लाकर सार्वजनिक रूप में उनके अपराधों का दण्ड दिया जाता था। जघन्य अपराधियों को फाँसी भी यहीं दी जाती थी। 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' को अपने कार्यों के लिए इस क्षेत्र की आवश्यकता पड़ी और 'कम्पनी-सरकार' ने तालाब के किनारे बसे मन्दिर को हटाने का निर्णय लिया। तालाब के अन्य किनारों पर एक ओर **'मस्जिद'** और एक ओर **'गिरजा-घर'** भी था। इन धार्मिक स्थलों को तोड़ने की क्षति-पूर्ति हेतु 'कम्पनी-सरकार' ने सम्बन्धित धार्मिक स्थलों के प्रमुखों को कुछ धन भी दिया। इस प्रकार **'मुम्बा देवी मन्दिर'** मूल स्थान से हट कर **'कालबा देवी'** के वर्तमान स्थान पर आ गया। यह बात सन् १७३७ की है।

कुछ विद्वान् **'मुम्बा'** शब्द का मूल **'अम्बा'** शब्द को ही मानते हैं। जैसे 'काली **माँ**' को हम 'महा-काली' के नाम से पुकारते हैं, उसी प्रकार **'अम्बा'** **'महा-अम्बा'** और बाद में 'मुम्बा' नाम पड़ गया। अन्य लोगों का मत है कि **'मुम्बई'** का नाम **'मुम्बा देवी'** से ही निकला है। यह मत समीचीन भी है क्योंकि **'मुम्बई'** शब्द का सन्धि - विच्छेद है--**'मुम्बा+आई'**। 'देवी' को 'माँ, माता' या **'आई'** कहना एक सामान्य बात है। महा-राष्ट्र में **'माँ'** को **'आई'** ही कहते हैं। इसलिए **'मुम्बई'** अर्थात **'मुम्बा देवी'** या माता का स्थान।

'मुम्बा देवी' के वर्तमान मन्दिर का निर्माण सन् १७३७ में सोने के प्रसिद्ध व्यापारी 'पाण्डुरङ्ग सेठ' ने करवाया। उन्होंने 'कम्पनी-सरकार' से मिली क्षति-पूर्ति के धन में कुछ अपनी ओर से जोड़कर और कुछ चन्दे द्वारा एकत्र कर इस मन्दिर का निर्माण कराया। पहले **'मुम्बा देवी मन्दिर'** के तीन प्रवेश-द्वार थे।

इस सम्बन्ध में एक पुराने ग्रन्थ का विवरण यहाँ उद्धृत करने योग्य है—**मुम्बा देवी के मन्दिर का विस्तार 'मारवाड़ी बाजार' के इस छोर से उस छोर तक है। मारवाड़ी बाजार से तात्पर्य है हीरे-जवाहरात के व्यापारियों का जौहरी-बाजार। 'चिञ्च' बन्दर की ओर जानेवाले मार्ग पर इसका मुख्य प्रवेश-द्वार मारवाड़ी बाजार की ओर है। तीसरा प्रवेश-द्वार प्रमुख मार्ग की ओर 'ताम्बट चाल' के सामने अर्थात् 'पायधुनी' और 'भायखला' को ओर जानेवाले मार्ग पर है।'** आज केवल एक ही प्रवेश-द्वार प्रयोग में लाया जाता है।

'मुम्बा देवी मन्दिर' में वर्ष में दो बार 'चैत्र' और 'आश्विन' नवरात्रि के नौ दिनों तक बहुत बड़े उत्सव मनाए जाते हैं, जिनमें हजारों दर्शनार्थी प्रति-दिन आकर मनोहर दर्शन का लाभ उठाते हैं। आश्विन मास के **'शारदीय नवरात्र'** में दशहरे की पूर्व-सन्ध्या के नौ दिनों तक मनाए जानेवाले उत्सव का प्रारम्भ शुक्ल-पक्ष के प्रथम दिन से होता है। इस महीने के पहले दिन बोए गए चावल के अंकुर तोड़कर दशहरे के दिन देवी के चरणों में अर्पित किए जाते हैं। 'महा-नवमी' के एक दिन पहले अर्थात् अष्टमी को अनाज, घी, नारियल की आहुति देकर 'हवन-कुण्ड' को प्रज्वलित किया जाता है। दशहरे के दिन देवी को अर्पित किए गए चावल के **'अंकुर'** दर्शनार्थियों को प्रसाद-स्वरूप बाँटे जाते हैं। चैत्र शुक्ल पक्ष के **'वासन्तिक नवरात्र'** में नौ दिन मनाए जानेवाले उत्सव का अपना विशेष महत्त्व है क्योंकि इसी महीने में भारतीय परम्परानुसार नए वर्ष का प्रारम्भ होता है। ऐसी मान्यता है कि इसी दिन मर्यादा-

पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र ने दक्षिण प्रदेश को महा-बली बलि के आत्यचारों से मुक्त कराया था। इन दो पर्वों के अतिरिक्त प्रति सप्ताह मन्दिर में 'मङ्गलवार' को देवी की विशेष पूजा होती है। **'मुम्बा देवी मन्दिर'** से सटे हुए **'इन्द्राणी अम्बा देवी का मन्दिर, सिद्धेश्वर महादेव मन्दिर, हनुमान मन्दिर'** और **'गणेश मन्दिर'** हैं। दूसरे प्रवेश-द्वार की ओर **'गणपति, लक्ष्मी-नारायण'** और **'पञ्च-मुखी महा-देव'** की मूर्तियाँ हैं। इन्हीं मूर्तियों के पीछे **'शमी'** का एक वृक्ष भी है। दशहरे के दिन इसकी भी पूजा की जाती है।

'मुम्बा देवी मन्दिर' प्रतिदिन प्रातः साढ़े छह बजे **'मङ्गल आरती'** के साथ खुलता है। आठ बजे 'शृङ्गार-आरती', साढ़े नौ बजे 'बड़ी आरती' और दोपहर सवा बारह बजे देवी को 'राज-भोग' दिया जाता है। फिर सायं-काल साढ़े छः बजे 'शृङ्गार - आरती', आठ बजे 'बड़ी आरती' और रात नौ बजे 'शयन-आरती' के बाद मन्दिर बन्द हो जाता है।

'मुम्बा देवी' के दर्शन के लिए नित्य आनेवाले श्रद्धालु भी बहुत हैं। गर्मी हो या जाड़ा अथवा वर्षा—नियमित आनेवालों इन भक्तों का क्रम कभी नहीं टूटता। उत्तर भारतीयों में ये देवी **'बम्बा देवी'** के नाम से विख्यात हैं। कदाचित् यह अंग्रेजों द्वारा इस नगर को दिए गए नाम **'बाम्बे'** का ही प्रभाव है। कुछ भी हो, उत्तर भारत की माटी से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति की श्रद्धा **'मुम्बा देवी'** पर अवश्य होती है क्योंकि उसका बाप, बेटा, भाई, पति अथवा मित्र इस 'महा-नगरी' से जुड़ा है। उत्तर भारत के गाँवों से यहाँ आनेवाले अथवा यहाँ से उन गाँवों को जानेवाले पत्रों में भी **'मुम्बा देवी'** का उल्लेख निश्चय ही होता है। मुम्बई आने पर प्रत्येक उत्तर भारतीय इसीलिए सबसे पहले **'मुम्बा देवी'** के ही दर्शन करना चाहता है।

'मुम्बा देवी' और उनके मन्दिर की पूजा-आराधना से जुड़े व्यवसाय से लगभग हजारों परिवारों का पालन-पोषण हो रहा है। इन परिवारों में अधिकतर उत्तर भारतीय ही हैं। देवी के 'चढ़ावे' की सामग्री की दूकानें, धार्मिक पुस्तकों की दूकानें, कपड़े की दूकानें, पूजा-सामग्री की दूकानें, होटल, चाय-पान की दूकानें, महिलाओं के शृङ्गार - प्रसाधन की दूकानें आदि मन्दिर के आस-पास स्थित हैं, जो उक्त कथन की पुष्टि करती हैं। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार और राजस्थान के कितने ही लोग ऐसे हैं, जो तीन-तीन, चार-चार पीढ़ियों से यहाँ निवास कर रहे हैं।

'मुम्बा देवी मन्दिर' की व्यवस्था और इसके सञ्चालन का भार **'मुम्बा देवी ट्रस्ट'** पर है। 'ट्रस्ट' में कुल नौ 'ट्रस्टी' हैं। मन्दिर की देख-भाल के लिए बारह पुजारी, पाँच रक्षक, पाँच कार्यालय-कर्मचारी और चार स्वच्छकार हैं।

[मुम्बई नगर के अन्य मन्दिरों के विवरण भी यदि मिलेंगे, तो प्रकाशित किए जाएँगे।—सं०]

• श्री ललिता सहस्रनाम •

मूल-मात्र, साधना-क्रम सहित, मूल्य १०-०० रु०

श्रीगंगा जी के विभिन्न रूप

• पं० ठाकुरदत्त मिश्र, प्रयाग

'श्रीविष्णु-पुराण' के दूसरे अंश के ८ वें अध्याय में ध्रुव-लोक से श्रीगङ्गा जी की उत्पत्ति होने की कथा वर्णित है। उसके अनुसार वामन - रूप - धारी भगवान् श्रीविष्णु ने दैत्य - राज बलि के यज्ञ में जाकर दान के रूप में जब तीन पग भूमि माँगी और गुरु शुक्राचार्य के रोकने पर भी राजा बलि ने ब्रह्मचारी ब्राह्मण-रूप-धारी भगवान् श्रीविष्णु को उनके द्वारा याचित दान दे दिया, तब भगवान् ने विराट् रूप धारण कर अपना बाँयाँ चरण-कमल ब्रह्माण्ड में स्थित कर दिया था। उसी समय उनके चरण के अँगूठे के नाखून से श्रीगङ्गा जी का उद्गम हुआ था। इसीलिए **'विष्णु - पदी'** नाम से तीनों लोकों को पवित्र करनेवाली वे देव-नदी प्रसिद्ध हुईं। स्वर्ग-लोक, मर्त्य - लोक तथा पाताल - लोक—तीनों में ही ये सदा वर्तमान रहती हैं। इसलिए ये **'त्रिपथगा'** नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

उक्त पुराण में वहीं श्रीगङ्गा जी के माहात्म्य का भी विशद रूप से वर्णन है। यहाँ संक्षेप में उल्लेखनीय है कि महाराजा ध्रुव गङ्गा जी को सदा अपने मस्तक पर धारण किए रहते हैं। मर्त्य - लोक में आने से पहले श्रीगङ्गा जी सु-दीर्घ काल तक भगवान् शिव जी की जटा पर विराजमान रहीं। बाद में जगत् को पवित्र करने के लिए पृथिवी पर आईं।

'श्रीमत्स्य-पुराण' में १२१ वें अध्याय में कैलास पर्वत के समीप-वर्ती स्थानों का वर्णन है। वहाँ श्रीगङ्गा जी की सात धाराओं का उल्लेख है। कैलास पर्वत की शोभा का वर्णन करने के बाद यह लिखा गया है कि उसके समीप ही उत्तर दिशा में **'हिरण्य-शृङ्ग'** नामक एक विशाल पर्वत है, जो हरिताल से परिपूर्ण पर्वत-श्रेष्ठ **'गौर'** तक फैला हुआ है। इस कल्याणकारी पर्वत पर दिव्य औषधियाँ प्राप्त होती हैं। इसके पाद-प्रदेश में **'विन्दु-सर'** नामक एक अत्यन्त रमणीय सरोवर है, जो सुवर्ण के समान बालुका से युक्त है। अपने पूर्वजों को मोक्ष प्रदान करने की कामना से श्रीगङ्गा जी को इस धरा-धाम में अवतीर्ण कराने की कामना से उस स्थान पर बैठकर ही राजर्षि भगीरथ ने तपस्या की थी। इसलिए भगवती **'त्रिपथगा'** (स्वर्ग, मर्त्य और पाताल में वास करनेवाली) श्रीगङ्गा जी पहले - पहल वहीं पर अवतरित हुई थीं। श्रीगङ्गा जी की सात धाराओं का वर्णन करते हुए वहीं बताया है कि **'सोम-पर्वत'** के पाद-देश से निकल कर वे सात धाराओं में विभाजित हो गईं। **'विन्दु-सरोवर'** के समीप बहुत से मणि-यज्ञ-स्तम्भ तथा सुवर्ण-मय विमान शोभायमान हैं। यहीं देव-राज इन्द्र ने समस्त देव-गण के सहित यज्ञ कर सिद्धि प्राप्त की थी। दिव्य छाया-पथ तथा नक्षत्रों का मण्डल वहाँ विद्यमान है और वहीं श्रीगङ्गा जी, जो **'त्रिपथ-गामिनी'** हैं, रात्रि में चमकती हुई दिखाई पड़ती हैं।

श्रीशिव जी की स्तुति के रूप में एक श्लोक पढ़ा जाता है, जिसका एक पाद है—**'गङ्गा-तरङ्ग-रमणीय-जटा-कलापम्'** अर्थात् उन श्रीशिव जी की जटा का समूह श्रीगङ्गा जी की तरङ्गों से रमणीय हो उठा है। राजर्षि भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर श्रीगङ्गा जी ने जब पृथिवी पर उतरना स्वीकार किया था, तब उन्होंने कहा था कि 'मेरा वेग पृथिवी नहीं सँभाल पाएँगी। उस दशा में पृथिवी को छोड़ कर मैं सीधे पाताल में चली जाऊँगी। हाँ, श्रीशिव जी अवश्य मेरे वेग को धारण कर सकते हैं।' श्रीगङ्गा जी का अभिप्राय जानकर महाराज भगीरथ ने तपस्या के द्वारा श्रीशिव जी को प्रसन्न किया

और जब उनकी प्रार्थना के अनुसार उन आशुतोष गौरी-नाथ ने श्रीगङ्गा जी के वेग को अपने मस्तक पर धारण करना स्वीकार कर लिया था, तब उक्त राजा की प्रार्थना से श्रीगङ्गा जी अवतरित हुई थीं। आकाश-मण्डल से पृथिवी-तल पर आते समय श्रीगङ्गा जी के हृदय में यह भावना थी कि 'अपनी धारा के साथ-साथ मैं श्रीशिव जी को भी लिए हुए पाताल में प्रविष्ट हो जाऊँगी', किन्तु श्रीशिव जी ने योग-बल से श्रीगङ्गा जी की उक्त अहङ्कार-भरी भावना का ज्ञान प्राप्त कर उनके प्रभाव को क्षीण कर दिया, जिससे अपने सहचर जीवों के सहित गङ्गा जी उनकी जटाओं में उलझ गईं और चिर-काल तक उलझी ही पड़ी रहीं। महाराज भगीरथ को श्रीशिव जी को प्रसन्न करने के लिए पुनः तपस्या करनी पड़ी थी और उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर ही उन्होंने श्रीगङ्गा जी को पृथिवी पर अवतरित होने की शक्ति प्रदान की थी।

श्रीगङ्गा जी जितने दिनों तक श्रीशिव जी की जटाओं में उलझी पड़ी थीं, बूँद-बूँद करके उनका जल भूमि पर गिरा करता था। वही जल एकत्र होकर एक सरोवर के रूप में परिवर्तित हो गया, जो **'विन्दु-सर'** नाम से प्रसिद्ध हुआ। बाद को क्रमशः जब शङ्कर जी का क्रोध शान्त हुआ और तपस्या के द्वारा राजर्षि भगीरथ के नितान्त ही क्षीण हो गए शरीर तथा उनको दिए गए अपने वरदान का ध्यान उन्हें आया, तब श्रीगङ्गा जी को उन्होंने अपनी जटाओं से मुक्त किया और वे पृथिवी पर आकर सात धाराओं में विभाजित हो गईं। तीन धाराएँ तो पूर्व-वाहिनी हुईं और तीन पश्चिम-वाहिनी, जिनमें से एक **'सिन्धु नदी'** है। सातवीं धारा स्वयं **'गङ्गा जी'** हैं, जो महाराज भगीरथ के साथ पाताल में 'कपिल मुनि' के आश्रम में पहुँचकर 'सगर' के भस्मीभूत पुत्रों को अपनी पवित्र जल-राशि से मोक्ष प्रदान करने में सहायक हुई थीं। तभी से वे **'भागीरथी'** नाम से प्रसिद्ध होकर उन महाराज की कीर्ति को चिर-स्थायी किए हुए हैं।

श्रीगङ्गा जी हिमालय पर्वत से ही प्रवाहित हुई हैं। इसलिए वे उन पर्वत-राज की ज्येष्ठ पुत्री मानी जाती हैं। भगवान् श्रीशिव जी की सह-धर्मिणी **'उमा'** भी पर्वत-राज की कन्या हैं, इसलिए श्रीगङ्गा जी उनकी बहिन हैं। महा-भारत के अनुशासन-पर्व के १४५ वें अध्याय में श्रीगङ्गा जी तथा भगवती उमा का एक वार्त्तालाप है, जो बड़ा ज्ञान-वर्द्धक है। इस सम्बन्ध में पूर्व-सन्दर्भ यह है कि श्रीशिव जी तथा उनकी सह-धर्मिणी में **'स्त्री-धर्म'** के विषय में वार्त्तालाप हो रहा था। उस समय सिन्धु, यमुना, सरस्वती आदि अन्य नदियों के सहित श्रीगङ्गा जी भी वहाँ वर्तमान थीं। उन समस्त नदियों ने उस समय नारी-रूप धारण कर लिया था। यह सोचकर कि स्त्री-जाति के सम्बन्ध में एक स्त्री के द्वारा कही बात का अधिक महत्त्व है, श्रीशिव जी ने भगवती उमा से कहा था कि 'तुम्हें अपने धर्म का, जो सनातन मर्यादा के अनुकूल है, अच्छा ज्ञान है। इसलिए उसका वर्णन विशद रूप से करो।' उत्तर में श्रीपार्वती जी ने कहा था—'हे भगवन्, आपकी कृपा से मैं विस्तार से **'स्त्री-धर्म'** का वर्णन कर सकती हूँ, किन्तु ये समस्त नदियाँ समस्त तीर्थों का जल लिए हुए नारी-रूप में विराजमान हैं। अतः इन सबसे परामर्श करके मैं आपके प्रश्न का उत्तर देना चाहती हूँ। जो सर्वथा ज्ञान-सम्पन्न होकर भी अहङ्कार का परित्याग कर दूसरे लोगों के परामर्श के अनुसार अपने मत को स्थिर करता है, वही उत्तम है।'

अब समस्त नदियों में श्रेष्ठ तथा समुद्र में मिलनेवाली परम पुण्य नदी सरस्वती, विपाशा, चन्द्रभागा, इरावती, शतद्रु, सिन्धु, यमुना तथा अन्य नदियों को सम्मान-पूर्वक सम्बोधित करने के बाद भगवती श्रीउमा ने समस्त तीर्थों को अपने में समेट कर विराजमान श्रीगङ्गा जी से 'स्त्री-धर्म' के सम्बन्ध में विचार प्रकट करने का अनुरोध किया। उक्त नदियों ने भी गङ्गा जी को सबसे अधिक ज्ञान-सम्पन्न

समझ कर उनसे कहा--'हे भगवति गङ्गे ! आप हम सबकी अपेक्षा धर्म के तत्त्व को अधिक जानती हैं। बोलने में भी अधिक चतुर हैं। इसलिए हम सबकी ओर से आप ही **'स्त्री-धर्म'** के सम्बन्ध में बताएँ।'

श्रीगङ्गा जी मधुर मुस्कान के साथ जगज्जननी उमा से बोलीं—हे समस्त जगत् की माता ! देव-लोक की सभी देवियों में सर्व-श्रेष्ठ होने के साथ ही अनेक पुण्यों के प्रभाव से आपका जन्म हुआ है। अतएव आप ही हम सबको **'स्त्री-धर्म'** का उपदेश देने में समर्थ हैं।

श्रीगङ्गा जी के इस कथन के बाद श्री हिमवान-नन्दिनी ने विस्तार-पूर्वक जिस **'स्त्री - धर्म'** का वर्णन किया, वह इस लेख का विषय नहीं है। इस प्रसङ्ग का उल्लेख करने का उद्देश्य केवल यह प्रतिपादित करना है कि गङ्गा आदि नदियों का वर्णन शास्त्रों में जीती-जागती **'नारियों'** के रूप में हुआ है।

'महा-भारत' के 'आदि-पर्व' में भी श्रीगङ्गा जी के नारी - रूप का वर्णन है। अपने उस रूप में वे महात्मा 'भीष्म' की माता तथा चन्द्र-वंशी राजा 'शन्तनु' की सह-धर्मिणी बनी थीं। बाद को सु-दीर्घ-काल तक पृथिवी पर तपो-मय जीवन व्यतीत करने के बाद जब उन महात्मा ने अपने भौतिक शरीर का परित्याग किया था और उनकी अन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न करने के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण, महर्षि वेद-व्यास, अन्यान्य अगणित ऋषि-मुनि के सहित धर्म-पुत्र युधिष्ठिर, भीमसेन आदि भाइयों को लेकर हरि-द्वार में श्रीगङ्गा जी के तट पर जब उनकी उदक - क्रिया करने के निमित्त गए थे, तब श्रीगङ्गा जी एक नारी के वेश में निकल आई थीं और पुत्र के उत्तम गुणों का वर्णन करते-करते उन्होंने बड़ा विलाप किया था। उस अवसर पर पुत्र-शोक से अधीर श्रीगङ्गा जी को धैर्य प्रदान करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा था—'हे देवि ! महात्मा भीष्म एक 'वसु' थे। अपना कार्य-काल समाप्त कर वे पुनः स्वर्ग - लोक में वसुओं के मध्य पहुँच गए हैं। अतः उनके लिए शोक करने की आवश्यकता नहीं है।'

ब्रह्मा के शाप से श्रीगङ्गा जी को मानवी के रूप में क्यों अवतार धारण करना पड़ा था, इसका वृत्तान्त संक्षेप में यह है कि एक बार नारी-रूप में श्रीगङ्गा ब्रह्मा जी के दर्शन हेतु उनकी सभा में गई थीं। संयोग-वश उस समय वायु के कारण वे वस्त्र-रहित हो गईं। उस समय ब्रह्मा-सहित सभी उपस्थित देवों ने अपने मस्तक नीचे कर लिए थे, किन्तु राजा महाभिष ने, जो समुद्र के अंशावतार होने के कारण श्रीगङ्गा जी को अपनी पत्नी समझते थे, उनके विवस्त्र-रूप को देखकर मुस्करा दिया और श्रीगङ्गा जी ने भी उनकी मुस्कराहट का उत्तर मुस्करा कर ही दिया। इस अनुशासन - हीनता के कारण उन दोनों को मृत्यु-लोक में पुरुष और स्त्री के रूप में जन्म ग्रहण करने का शाप मिला था। ठीक इसी प्रकार आठ वसुओं को भी वशिष्ठ ऋषि के शाप से पृथिवी पर मानव-रूप में जन्म लेना था। उनमें से एक को दीर्घ-काल तक पृथिवी पर रहना था, जब कि शेष सात वसुओं को केवल जन्म लेने भर का ही शाप था।

ब्रह्मा के शाप के अनुसार श्रीगङ्गा जी जब स्वर्ग-लोक से पतित हो रही थीं, तभी वसु-गण भी उस लोक से पृथ्वी पर उतर रहे थे। मार्ग में भेंट होने पर उन सबने श्रीगङ्गा जी से प्रार्थना की कि वे उनकी जन्म-दात्री बनना स्वीकार करें। श्रीगङ्गा जी ने वसु-गण की प्रार्थना उनके द्वारा बताई गई शर्त के साथ स्वीकार कर ली थी। यथा-समय 'महाभिष' हस्तिनापुर के राजा शन्तनु हुए। श्रीगङ्गा जी से उनका मिलन हुआ और वे दोनों पति-पत्नी बन गए, किन्तु पत्नी बनने से पहले 'नारी - रूपा' श्रीगङ्गा जी ने राजा को वचन-बद्ध कर लिया था कि वे उनके किसी भी कार्य में बाधा नहीं डालेंगे, अन्यथा वे उन्हें छोड़कर चली जायँगी।

कुछ समय बाद प्रथम पुत्र का जन्म हुआ और रानी ने तुरन्त ही उसे ले जाकर श्रीगङ्गा जी

के जल में प्रवाहित कर दिया। इस प्रकार पहले वसु ऋषि-शाप से मुक्त होकर पुनः स्वर्ग के अपने स्थान में, जो वसु-गण के लिए निर्दिष्ट था, पहुँच गए। राजा को रानी के उक्त प्रकार के हृदय - हीनता - पूर्ण कार्य के कारण दुःख अवश्य हुआ था, किन्तु वचन-बद्ध होने के कारण उनके कार्य का प्रतिवाद करने का साहस उन्हें नहीं हो सका। इसके सिवा वे रानी की रूप-राशि पर इतने अधिक मुग्ध थे कि उनके वियोग की सम्भावना से ही वे अधीरता का अनुभव करने लगते थे।

यथा-समय दूसरे पुत्र का जन्म हुआ और उसे भी पहले की ही तरह रानी जी श्रीगङ्गा जी में प्रवाहित कर आईं। बाद को क्रमशः तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे और सातवें पुत्र को भी उन्होंने जन्म के बाद ही जल में बहा दिया। राजा ने अपने इन सभी पुत्रों को देखा था। ये सभी पुत्र एक-से-एक बढ़कर रूपवान् तथा तेजस्वी थे और इन सबके नष्ट हो जाने के कारण राजा को बड़ा दुःख था। रानी के इस प्रकार के अपार जघन्य आचरण के कारण उन्हें जितना क्रोध आता था, उससे कहीं अधिक उनकी कुत्सित मनोवृत्ति के कारण उनसे घृणा भी होती थी, किन्तु रानी की अपार रूप-राशि को देखकर उनके वियोग की आशङ्का से वे शोक के प्रबल आवेग को भी किसी प्रकार सहन कर लिया करते थे। तथापि जब आठवें पुत्र का जन्म हुआ, तब विधि की प्रेरणा से राजा उसकी रक्षा के लिए कटि-बद्ध हो गए और सदा की भाँति नव-जात पुत्र को लेकर जब रानी जी बाहर निकलने लगीं, तब राजा ने सामने आकर उन्हें डाँटा—"री हृदय - होने! इस बार तू इस बालक को नष्ट नहीं करने पाएगी। मुझे तुम्हारे रहने या जाने का कोई हर्ष-विषाद अब नहीं।"

राजा की डाँट को सुनकर रानी जी रुक गईं। उन्होंने दृढ़ता-पूर्ण स्वर में कहा—"हे पुत्रवालों में श्रेष्ठ! मैं आपके इस पुत्र की रक्षा करूँगी और इसके द्वारा आप एक सौभाग्यशाली पिता बनने का सुख प्राप्त करेंगे, किन्तु विवाह के समय हम दोनों के बीच जो शर्त हुई थी, उसे आपने तोड़ दिया है। इसलिए अब मैं आपके यहाँ से सदा के लिए जा रही हूँ।"

यह कहकर रानी-रूपा श्रीगङ्गा जी चली गईं। जाते समय उन्होंने सारा रहस्य खोल दिया था। शिशु को वे अपने साथ लेती गईं और पालन - पोषण करके तथा समस्त राजोचित गुणों से उसे सम्पन्न बनाकर यथा-समय राजा को सौंप भी गईं। वही पुत्र राजकुमार देवव्रत कालान्तर में **'भीष्म पितामह'** नाम से विख्यात हुआ।

श्रीगङ्गा जी के उपर्युक्त **'मानवी रूप'** का वर्णन 'महा-भारत' के 'आदि - पर्व' में तथा महात्मा भीष्म के प्राण-त्याग के कारण उनके **'विलाप'** का वर्णन 'अनुशासन-पर्व' के अन्त में है।

राजर्षि भगीरथ की तपस्या तथा उसके फल-स्वरूप श्रीगङ्गा जी के धरा - धाम में अवतरित होने का वृत्तान्त 'महा-भारत' के 'वन-पर्व' के १०८ वें अध्याय में तथा 'श्रीमद्भागवत' के ९ वें स्कन्ध के ८ वें और ९ वें अध्याय में वर्णित है। श्रीगङ्गा जी के माहात्म्य का विस्तृत वर्णन 'महा-भारत' के 'अनुशासन-पर्व' के २६ वें अध्याय में किया गया है। जिज्ञासु पाठकों को उक्त स्थलों का अवलोकन करके अपनी ज्ञान-पिपासा को तृप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

गंगा जी का आध्यात्मिक स्वरूप

• ब्रह्मीभूत स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती

पुराणों में प्रत्येक वस्तु का तीन भावों में वर्णन किया गया है—१ आधि-भौतिक (स्थूल स्वरूप), २ आधि-दैविक (सूक्ष्म स्वरूप), ३ आध्यात्मिक (ज्ञान-स्वरूप)। तदनुसार श्रीगङ्गा जी की उत्पत्ति कहीं हिमालय से, कहीं शिव जी के मस्तक से और कहीं विष्णु जी से वर्णित है। यह सब गङ्गा जी के आधि-भौतिक, आधि-दैविक तथा आध्यात्मिक स्वरूप का वर्णन करने के लिए ही है। स्थूल गङ्गा हिमालय की कन्दरा से निकली है, यह बात सत्य है क्योंकि प्रत्यक्ष है। ऋषियों ने गङ्गा जी को हिमालय से निकलती हुई देखने पर भी, शिव जी के मस्तक से उसका निकलना बताया है। इसमें गङ्गा जी के आधि-भौतिक और आधि-दैविक दोनों रहस्य विद्यमान हैं।

जिस प्रकार निराकार (सूक्ष्म) परमात्मा का यह अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड-मय संसार स्थूल विराट् स्वरूप है, उसी प्रकार शिव जी के भी दो स्वरूप हैं। शिव जी के श्वेत वर्ण, बाघम्बर-धारी, श्मशान-वासी एवं भुजङ्ग-भूषणों से विभूषित ध्यान से उनकी भाव-मयी मूर्ति का परिचय मिलता है, जो उनके निराकार स्वरूप के अनुसार बनती है। जिस मूर्त्ति के साथ गङ्गा जी की उत्पत्ति का सम्बन्ध बताया गया है, वह शिव जी की भाव-मय मूर्त्ति नहीं है, अपितु तत्त्वों के अनुसार बनी विराट् मूर्त्ति है। तत्त्वों के अनुसार पृथ्वी-तत्त्व के देवता 'शिव' हैं अर्थात् अधि-दव 'शिव' और अधि-भूत 'पृथ्वी' है। इसलिए शिव जी का आधि-भौतिक स्वरूप अर्थात् स्थूल विराट् स्वरूप (मूर्त्ति) 'पृथ्वी' है। जब पृथ्वी शिव जी की विराट् मूर्त्ति है, तो इस विचार से हिमालय शिव जी का मस्तक है क्योंकि मस्तक शरीर के सब अङ्गों से ऊँचा होता है। हिमालय, पृथ्वी में सबसे ऊँचा अङ्ग है ही, अतः हिमालय से गङ्गा जी का निकलना और शिव जी की जटा से निकलना दोनों एक ही बात है। हमारे ऋषि लोग सभी वस्तुओं में तीन भाव देखते थे। वे तीन भावों की पूर्ति से ही पूर्णता मानते थे। इसलिए गङ्गा जी को केवल जल की धारा न समझ कर उन्हें देवी समझते थे। गङ्गा जी में दैवी शक्ति विद्यमान है। दैवी शक्ति का प्रकाश शिव जी के द्वारा हुआ क्योंकि शिव जी महा - शक्ति के पति हैं और इसीलिए वे दैवी शक्ति के आधार हैं। उनके मस्तक से निकलती हुई गङ्गा जी में अनन्त दैविक शक्तियाँ भरी हुई हैं। इसी से गङ्गा जी त्रिलोक-तारिणी एवं पतित-पावनी हैं। उनके जल के स्पर्श से ही सगर - वंश के शाप-ग्रस्त व्यक्तियों का उद्धार हो गया।

यह बात विज्ञान - सिद्ध है कि जड़ वस्तु में जो कुछ शक्ति दिखाई देती है, वह सब दैवी शक्ति का स्थूल आश्रय से होनेवाला विकास मात्र ही है। प्रत्येक जड़ वस्तु में कार्य - कारिणी शक्ति तभी हो सकती है, जब उसको चलानेवाली चेतन-शक्ति हो अर्थात् प्रत्येक जड़ शक्ति, चेतन शक्ति के आश्रय से ही सब कार्य कर सकती है। जड़ हवा में जो कुछ शक्ति है, वह कभी काम नहीं कर सकती, यदि उसे चलाने-वाली चेतन-शक्ति न होती। जड़ अग्नि में जो कुछ शक्ति है, वह कभी काम न कर सकती, यदि उसे चलानेवाली चेतन-शक्ति न होती। ये सब चेतन-शक्तियाँ देवता या देवियाँ कहलाती हैं। इसी प्रकार जिस चेतन-शक्ति के प्रताप से 'गङ्गा-जल' अनन्त कार्यों को करता है, उसी चेतन - शक्ति का नाम 'गङ्गा देवी' है। इसी 'गङ्गा देवी' के रहने से 'गङ्गा-जल' में शरीर को आरोग्य करने की कई प्रकार की स्थूल

शक्तियाँ तथा मन एवं आत्मा को पवित्र करनेवाली सूक्ष्म शक्तियाँ हैं।

जब तक भौतिक विज्ञान ने 'गङ्गा-जल' की शक्ति के विषय में कुछ भी निर्णय नहीं किया था, तब तक पाश्चात्य - विद्याभिमानी लोग समझते थे कि 'गङ्गा - जल' और कूप का जल एक ही प्रकार का है दोनों में कोई भेद नहीं क्योंकि दोनों ही 'हाइड्रोजन' और 'आक्सीजन' के मिलने से बने हैं, किन्तु वैज्ञानिकों के शोध के फल-स्वरूप अब उनको पता लग गया है कि 'गङ्गा-जल' में एक अद्‌भुत स्थूल शक्ति विद्यमान है। 'गङ्गा' की हवा, 'गङ्गा' की मिट्टी, 'गंगा' का जल –सभी में शरीर को पुष्ट एवं आरोग्य करने की शक्ति विद्यमान है। 'गंगा' की मिट्टी को मलने से सब प्रकार के चर्म - रोग अच्छे हो जाते हैं। 'गंगा जल' में स्नान करने से मस्तिष्क के रोग ठीक हो जाते हैं। 'गंगा' के वायु-सेवन् से शरीर में कोई रोग नहीं रहता। 'गंगा' का जल पीने से अजीर्ण-रोग की तो बात ही क्या, जीर्ण ज्वर आदि कठिन रोग भी निर्मूल हो जाते हैं।

केवल इतना ही नहीं, अपितु बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने कह दिया है कि 'गंगा - जल' में शरीर को बढ़ानेवाली अपूर्व शक्ति विद्यमान है, जिससे दुर्बल रोगी रोग से मुक्त होने के पश्चात् यदि शरीर में बल बढ़ाना चाहें, तो उन्हें 'टानिक' खाने की आवश्यकता नहीं है—केवल 'गंगा - जल' पान और 'गंगा' में स्नान करने से ही शरीर को पूर्ण बल प्राप्त हो सकता है। यह भी सिद्ध हो चुका है कि कूप, तालाब आदि के जल दो-चार दिन में ही खराब होकर पीने योग्य नहीं रहते, परन्तु 'गंगा-जल' चाहे कितने ही दूर ले जाकर वर्षों तक रखने पर भी खराब नहीं होता। वैसा ही स्वादिष्ट और पान करने योग्य बना रहता है।

मलेरिया, प्लेग, हैजा आदि रोग कीटों से फैलते हैं। हैजे के कीट जल में ही अधिक उत्पन्न होते हैं। परीक्षा करके देखा गया है कि 'गंगा-जल' में कभी किसी रोग का कीटाणु उत्पन्न नहीं होता। यहाँ तक कि 'गंगा-जल' में रोग के कीट लाकर डाल देने पर भी वे कीट मर जाते हैं। 'गंगा - जल' में इस प्रकार की अपूर्व शक्ति है। इसलिए ऋषियों ने 'गंगा-जल' की स्तुति करते हुए कहा है—

शरीरे जर्जरी-भूते, व्याधि-ग्रस्ते कलेवरे। औषधं जाह्नवी-तोयं, वैद्यो नारायणो हरिः ॥

अर्थात् शरीर के जर्जर हो जाने पर, व्याधियों से ग्रस्त हो जाने पर 'गंगा-जल' ही श्रेष्ठ औषध है और श्रीमन्नारायण ही वैद्य-राज हैं। 'गङ्गा-जल' ही श्रेष्ठ औषध है। यह सब कहना 'गङ्गा-जल' में जड़-शक्ति के लक्षणों का वर्णन है। इसी जड़-शक्ति की मूल - स्वरूपिणी चेतन - शक्ति संसार में 'गङ्गा देवी' रूप में प्रसिद्ध हैं, जिनकी महिमा समस्त हिन्दू-शास्त्रों में वर्णित है। यहाँ तक कहा गया है कि 'गङ्गा देवी' के स्मरण एवं स्पर्श मात्र से ही घोर-से-घोर पाप दूर हो जाते हैं।

संसार में 'शक्ति' की ही पूजा हुआ करती है--रक्त-मांस की नहीं। 'शक्ति' ही दूसरे के चित्त पर प्रभाव डाल सकती है। 'शक्ति-मान्' पुरुष ही अपनी वाणी और कार्य के द्वारा सबका चित्त आकर्षण करते हैं। जिनमें 'शक्ति' नहीं है, उनके वश में कोई नहीं होता। चमत्कार को ही नमस्कार है। आज पाश्चात्य-विद्याभिमानियों एवं नास्तिकों द्वारा 'गंगा' जी की महिमा की उपेक्षा करने पर भी लाखों, करोड़ों लोग 'गंगा' का नाम सुनते ही भक्ति-भाव के साथ आकृष्ट हो उठते हैं। उसके पवित्र जल में स्नान करके समस्त पाप-नाश और मुक्ति-पद पाने की आशा रखते हैं। यहाँ तक कि सामान्य पर्व पर भी वे अत्यन्त कष्ट सहन करके हरिद्वार आदि तीर्थों में जाकर स्नान करके अपनी आत्मा को पवित्र करते हैं। यह सब 'गंगा जी' की शक्ति का ही परिचायक है।

मूर्त्ति-पूजा का रहस्य समझने पर मालूम होगा कि हिन्दू वास्तव में पाषाण आदि की मूर्त्तियों की पूजा नहीं करते, अपितु उन मूर्तियों के माध्यम से अपनी श्रद्धा, भक्ति, क्रिया आदि के बल पर सर्व-व्यापक भगवान् की शक्ति को प्रकट कर, उसी की पूजा करते हैं। भक्त लोगों में श्रद्धा, भक्ति और क्रिया की जो शक्ति है, वही शक्ति भगवान् की दैवी शक्ति को मूर्ति के द्वारा प्रकट कर देती है। मूर्त्ति तो केवल एक माध्यम मात्र है। उसमें भगवान् की 'शक्ति' प्रकट होना तभी सम्भव है, जब साधक को श्रद्धा और क्रिया ठीक-ठीक हो। 'गंगा-जल' में दैवी शक्ति का समावेश है, वह भी इसी विज्ञान के अनुसार है अर्थात् 'गंगा' की दैवी शक्ति '**मन्दाकिनी**' - रूप से दिव्य - लोक में व्यापक है, उसी को भक्त राजा भगीरथ ने अपनी तपस्या और भक्ति के बल से मृत्य-लोक में 'गंगा देवी' रूप से प्रकट कर दिया।

उक्त विज्ञान को इस प्रकार भी समझ सकते हैं कि भौतिक विज्ञान द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि सूक्ष्म शक्ति के घनीभूत होने से ही स्थूल वस्तु बनती है। सूक्ष्म शक्ति में स्पन्दन का आधिक्य होने पर सूक्ष्मता नष्ट होकर स्थूलता आती है। प्रलय के समय स्थूल वस्तुएँ नष्ट होकर केवल उनकी शक्ति ही शेष रह जाती है। पुनः सृष्टि का समय आने पर वही अवशिष्ट शक्ति घूमती हुई, गाढ़ी होकर, स्थूल संसार-रूप में परिणत हो जाती है। हिन्दू-शास्त्रों का भी यही सिद्धान्त है कि प्रलय की दशा में स्थूल दृश्य-जगत् नष्ट होकर प्रकृति के गर्भ में लय हो जाता है। प्रकृति भगवान् की शक्ति है। वह भी पर-मात्मा में लय हो जाती है। इस प्रकार सूक्ष्म शक्ति से स्थूल जगत् का विनाश होना सिद्ध है। 'गंगा जी' की जो सूक्ष्म चेतना-शक्ति '**मन्दाकिनी**'-रूप से दिव्य लोक में विराजमान है, वही भक्त राजा भगीरथ की तपस्या के बल से 'द्रव' होकर स्थूल 'गंगा नदी' के रूप से शिव जी की जटा में होकर पृथ्वी पर बहने लग गई।

अब समझना यह है कि 'गंगा जी' का आध्यात्मिक स्वरूप क्या है? भगवान् शङ्कराचार्य ने जिन 'गंगा' का स्तुति की है, वे ज्ञान-रूप प्रवाहवाली विमल 'आदि-गंगा' हैं। उनकी उत्पत्ति भगवान् विष्णु से हुई है। विष्णु जी परमात्मा की 'चित्-सत्ता' अर्थात् ज्ञान-सत्ता के केन्द्र-रूप हैं। इसलिए उन्हीं से 'ज्ञान-गंगा' का निकलना विज्ञान-सिद्ध है। इसी को किसी - किसी पुराण में ऐसा भी वर्णन किया है कि शिव जी के नृत्य को देखकर विष्णु 'द्रवीभूत' हो गए और उसी से 'गंगा' निकलीं! यह सब भी उसी भाव का वर्णन है। इस प्रकार 'गंगा जी' के स्वरूप के विषय में पुराण - कथित आधि - भौतिक, आधि-दैविक और आध्यात्मिक—तीनों भावों की पूर्णता है।

गंगा-यमुना-सरस्वती पूजा अंक

भगवती गङ्गा की भोग व मोक्ष-दायिनी स्तुतियाँ, महर्षि वेद-व्यास द्वारा वर्णित प्राचीन श्री गङ्गा-माहात्म्य-कथा, भगवती यमुना की आनन्द-दायिनी स्तुतियाँ, गङ्गा जी का माहात्म्य, भगवती गङ्गा की मन्त्र-साधना, भगवती सरस्वती की पूजा हेतु पढ़ें।

मूल्य ४) मात्र

'चण्डी-कवच' का महत्त्व

• पं० रामकृष्ण तिवारी, तिवरान, सैदाबाद, प्रयाग

लौकिक भाषा में '**कवच**' का अर्थ है—वर्म (जिरह बख्तर), लौहावरण। युद्ध में वर्म से जैसे शरीर सुरक्षित रहता है, सहसा उस पर कोई आघात नहीं कर सकता, उसी प्रकार जीवन-कलह में साधक के कवचावृत होने पर वह त्रि-तापों (आधि-भौतिक, आधि-दैविक और आध्यात्मिक) से बचा रहता है, उस पर सहसा कोई आक्रमण नहीं कर सकता। आत्म-रक्षा के लिए **इष्ट-देवता का कवच-पाठ** बड़ा उपयोगी है। जो श्रद्धा-सहित कवच-पाठ करने में असमर्थ हों, उनको भूर्ज-पत्र पर लिखकर ताबीज में भरकर बाँध दिया जाता है, जिससे उनकी रक्षा होती है, मनचाहा काम बन जाता है और समस्त आपत्ति-विपत्तियों तथा आधि-व्याधियों से छुटकारा हो जाता है। किसी विपद्-ग्रस्त आर्त अथवा रोगी पर **कवचोक्त न्यास** करने से भी विपत्ति या व्याधि दूर होती है, किसी आत्मीय स्नेह-पात्र व्यक्ति के सङ्कट में पड़ जाने की सम्भावना होने पर उसके उद्देश्य से **कवच-पाठ** करने से उसे सङ्कटों से छुटकारा मिल जाता है। प्रायः सभी मुख्य-मुख्य इष्ट-देवताओं के कवच हमारे पूर्वज ऋषियों ने बताए हैं, जिनमें से कुछ उपलब्ध भी हैं। जो देवता जितनी अधिक प्रभावशाली होगी, उतना ही उसका '**कवच**' शक्ति-सम्पन्न होगा। **देवी-कवच, शिव-कवच, हनुमत्कवच, नृसिंह-कवच, भैरव-कवच**, आदि बड़े ही प्रभावशाली तथा तेज-पूर्ण हैं और '**राम-बाण**' जैसे अचूक गुणकारी हैं। **देवी-कवच** और **शिव-कवच** का प्रयोग कर हमने प्रत्यक्ष उनकी कार्य-कारिता का अनुभव किया है। हमारे अनुभव से दोनों ही बड़े जागृत और आशु-फल-दायी सिद्ध हुए हैं। कवच से जल या भस्म को अभिमन्त्रित कर, पीड़ित व्यक्ति के शरीर में लगा देने से, उसकी पीड़ा दूर होकर वह स्वस्थ हो जाता है।

'**चण्डी-कवच**' ब्रह्मा जी ने महर्षि मार्कण्डेय को बताया और उन्होंने देवी-उपासकों में प्रचार किया। यह सिद्ध 'कवच' स्तोत्र है। इसके पाठ से उपासक की हर प्रकार से सुरक्षा होकर उसकी कोई भी कामना सिद्ध हो जाती है। उसका कोई अशुभ नहीं होता। शत्रु शरण में आते हैं, रोग भाग जाते हैं, दरिद्रता मिट जाती है, कोई अभाव नहीं रहता। निर्भय और सुख-मय जीवन बिताकर वह अन्त में सद्-गति प्राप्त करता है।

यद्यपि साधना के मन्त्रों और स्तोत्रों की फल-श्रुतियाँ भक्तों के उत्साह-वर्धनार्थ माँ के चरणों में प्रवृत्त होने के हेतु ही लिखी मानी जाती हैं, तथापि '**चण्डी-कवच**' की फल-श्रुति केवल अर्थ-वाद नहीं है। अनुभव से वह सर्वथा सत्य ही सिद्ध हुई है। जन्मान्तर के प्रबल दुष्कर्मों के प्रभाव से भले ही किसी को फल न मिले, किन्तु जो सच्चे हृदय से श्रद्धा-पूर्वक इस '**चण्डी-कवच**' का पाठ करता है, उसके सब मनोरथ सफल हो जाते हैं और उसे कोई अभाव नहीं रहता, इसमें संदेह नहीं। जिस व्यक्ति से पूजा, जप, होम, तर्पण आदि यथा-विधि साधना करते न बने, वह यदि केवल '**कवच**' का ही पाठ करे, तो उसके सब काम बन जाते हैं, यह अनुभव-सिद्ध बात है। अतः लोगों को इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

'ध्वनि-तरंगों' का रहस्य

इटली की विश्व-विख्यात गायिका द्वारा 'वीणा' पर ऋग्-वेद की ऋचा का गायन करते हुए, रेत पर 'हंस-वाहिनी' का चित्र 'ध्वनि-तरङ्गों' से ही उत्पन्न कर देना एक बहुत पुरानी घटना हो चुकी है। चित्र-पट के पर्दे की तरह, केवल एक वस्त्र के परदे पर, तीव्र विद्युत्-प्रकाश में 'भैरव-राग' की विकराल मूर्ति अङ्कित कर देनेवाला स्पेनिश गायक विश्व-विख्यात हो चुका है। 'ध्वनि-तरङ्गों' से वनस्पति को अधिक पल्लवित और पुष्पित करने के प्रयोग भी यथेष्ट हो चुके हैं और इन सब बातों से **'ध्वनि'** की प्रबल **'सृजक एवं पालक-शक्ति'** का अनुमान सरलता से ही लगाया जा सकता है। इसी प्रकार **'ध्वनि'** की जो विकट **'संहारक शक्ति'** है, उसके सम्बन्ध में आधुनिक विज्ञान में इतना मतैक्य है कि उसे सिद्ध करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

सृजक, पालक एवं सहायक ध्वनि-तरंगों की विशेषता

सृजक, पालक एवं संहारक--'ध्वनि-तरङ्गों' की एक सबसे बड़ी विशेषता जो है, वह है इनका **'अविनाशत्व'**। 'ध्वनि'–कभी नष्ट नहीं होती। इसी आधार पर पचासों वर्ष पूर्व के गाए हुए किसी गायन या किसी वार्त्तालाप को आप रेकार्ड आदि द्वारा आज भी उसी प्रकार सुनने में समर्थ होते हैं।

नाश का अभाव ही उत्पत्ति का अभाव है। जो उत्पन्न होता है, उसका नाश अवश्यम्भावी है और जिसका नाश होता है, उसकी पुनरुत्पत्ति भी अनिवार्य है। वस्तुतः **'नाश'** एक परिवर्तन मात्र है। **'नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सतः'** का सिद्धान्त आधुनिक भौतिक विज्ञान द्वारा सत्य सिद्ध हो चुका है। जो अवस्था 'नाश' के नाम से अभिव्यक्त होती है, वह केवल रूप का 'परिवर्तन' मात्र है। अतः अपरिवर्तन-शीलत्व को दूसरे शब्दों में जन्म-मरण-राहित्य कहा जा सकता है। जो जन्म-मरण-रहित है, वह अनादि एवं अनन्त है। यह सब केवल शब्दों का अन्तर है। इस प्रकार 'ध्वनि' **अनादि एवं अनन्त है।**

सत्य की परिभाषा यही है कि**—'जो त्रि-काल में एक-सा हो'** अर्थात् अपरिवतन-शील पदार्थ सत्य होता है। 'ध्वनि' **'त्रि - काल में अपरिवतन - शील** है। अतः **'ध्वनि'** ही सत्य है, यह स्पष्ट रूप से प्रतिपादित है।

इस प्रकार 'ध्वनि' **सृजक** है, 'ध्वनि' **पालक** है और 'ध्वनि' ही **संहारक** है। 'ध्वनि' सर्व-शक्तिमान् है, 'ध्वनि' अनादि है, अनन्त है एवं 'ध्वनि' सत्य-स्वरूप है। विश्व के सम्पूर्ण ईश्वर-वादो धर्म, सम्प्रदाय एवं दर्शनों में 'ईश्वर' शब्द की परिभाषा मात्र यही है कि वह सृजक है, पालक है, संहारक है, अनादि-अनन्त है, सत्य-स्वरूप है एवं सर्व-व्यापी है। 'ध्वनि' के सर्व-व्यापकत्व के विषय में आज के युग में जब आप आकाश-वाणी एवं बेतार के तार का उपयोग कर रहे हैं, कुछ भी कहना व्यर्थ है। इस प्रकार स्पष्ट सिद्ध है कि विश्व का आस्तिक समाज जिस परमात्मा के गुण-गान करता नहीं थकता, वह **'ध्वनि'** को छोड़कर और कुछ नहीं है।

दूर से आती हुई अनेक प्रकार की सम्मिलित 'ध्वनि' केवल एक ही रूप में श्रुति-गोचर होती है। वह रूप है उसका--**'ओङ्···ओङ्···ओङ्···ओङ्।'** किसी मेले-ठेले में, किसी समूह में उससे अलग

होकर दूर जाकर सुनिए, केवल यही ध्वनि श्रुति-गत होगी। जंगल में चले जाइए, कान लगाकर सुनिए— **'ओम्'' ओम्''' ओम्'** ही सुनाई देगा। प्रपात को दूर से सुनिए। निशीथ के एकान्त प्रहर में झींगुरों की कर्ण-कटु चीख को भेदकर कान लगाइए, केवल—**'ओम्''' ओम्'** का ही नाद कर्ण-गोचर होगा। सभी प्रकार की ध्वनियों का सम्मिलित स्वर **है—'ओम्''' ओम्''' ओम्।'** इस सम्पूर्ण विनाश - शील किंवा परिवर्तन शील विश्व में 'ध्वनि' ही अविनाशी अथवा अपरिवर्तन-शील है।

विश्व की जब उत्पत्ति हुई है, तो विनाश तो अमिट सत्य है ही एवं विनाश के उपरान्त उत्पत्ति—यही तो विश्व-क्रम है। उत्पत्ति एवं विनाश के मध्य-काल में हम निवास करते हैं, किन्तु विनाश एवं उत्पत्ति के मध्य में क्या था, इस प्रश्न का एक ही उत्तर सम्भव है—**वह पदार्थ जो त्रि-काल में अपरिवर्तन-शील, अविनाशी है और वह है 'ध्वनि'**। अर्थात् प्रलय के उपरान्त मात्र 'ध्वनि' शेष थी। उस 'ध्वनि' का उस समय श्रुति-गोचर रूप क्या था? जो पूर्व विश्व की सम्पूर्ण सम्मिलित ध्वनियों का रूप सम्भव हो, वही तो? और सम्मिलित ध्वनि का मात्र एक रूप **है—'ओम्'' ओम्'''ओम्।'** सारांश यह है कि प्रलय के उपरान्त केवल एक 'ध्वनि' व्याप्त थी-'ओम्'।

इसीलिए भारतीय दार्शनिकों ने प्रलय के उपरान्त स्थित रहनेवाले तत्त्व को 'ओम्' के नाम से पुकारा। यह 'ओम्' ही सम्पूर्ण ध्वनि का मूल रूप है—सम्मिलित रूप है।

सभी प्रकार की ध्वनियाँ पानी नहीं बरसा सकतीं। सभी प्रकार की ध्वनियाँ पौधों को बढ़वार नहीं दे सकतीं। कुछ विशिष्ट ध्वनियाँ ही विशिष्ट कार्य-सम्पादन में समर्थ होती हैं। इसी प्रकार ध्वनियों का सम्मिलित रूप किसी भी सृजन, पालन किंवा संहार - कार्य में समर्थ नहीं होता क्योंकि परस्पर-विरोधी तत्त्वों के सम्मिश्रण से मिश्रित तत्त्व स्वभावतः क्रिया - हीन हो जाता है। सम्मिलित ध्वनि-मण्डल से किसी भी कार्य के सम्पादन के निमित्त आवश्यक है कि उस सम्मिश्रण का पृथक्-करण हो।

मानवीय सृष्टि से सम्बद्ध 'ध्वनि-तरंगों' का अन्वेषण

सम्पूर्ण विश्व के समग्र कार्य - कलापों को तीन भागों में ही विभक्त किया जा सकता है—१ सृजन, २ पालन और ३ संहार। अतः 'ध्वनि' के तीनों रूपों को अलग-अलग पहचानने का प्रयास हुआ और उसे अलग-अलग रूपों में पहचाना गया।

सृष्टि के आदि में 'ध्वनि' अपने मूल रूप से क्रमशः तीन रूपों में विभक्त हुई। इस विभक्ती-करण की विशद व्याख्या से ही हिन्दू-शास्त्र-पुराणादि भरे पड़े हैं। 'सप्तशती' के 'प्राधानिक रहस्य' में वह क्रम समझाया गया है, जिस क्रम से 'ध्वनि' की सृष्टि के आदि-रूप से तीन रूपों एवं उनसे पुनः छः रूपों का पृथक् - करण हुआ, किन्तु इतना जान लेने भर से भारतीय महा - वैज्ञानिकों को सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने अपना अन्वेषण चलाए रक्खा। उन्होंने देखा कि विश्व में——ब्रह्माण्ड में--पाँच तत्त्व ही अपने सूक्ष्म, सूक्ष्म-तर एवं सूक्ष्म-तम रूप में क्रिया-शील हैं। इन तत्त्व-विशेषों को उन्होंने क्रमशः १ क्षिति, २ जल, ३ पावक, ४ समीर एवं ५ गगन नाम दिया (ध्यान रहे, स्थूल विश्व में दृष्टि-गत भू-जल-अनल-अनिल-व्योम उक्त तत्त्वों के परिणाम हैं, तत्त्व नहीं)। उन अन्वेषकों ने 'ध्वनि-तरङ्गों' का इन तत्त्व-विशेषों से सम्बन्ध देखा। वस्तुतः 'ध्वनि - तरङ्गें' ही पञ्च सूक्ष्म - तम तत्त्वों की जननी हैं। अतः उन्होंने प्रत्येक तत्त्व (सूक्ष्म-तम) की उत्पादक भिन्न - भिन्न 'ध्वनि - तरङ्गों' का अन्वेषण प्रारम्भ किया और उन्हें खोज निकाला।

आदि-ध्वनि **'ओम्'** अनेक ध्वनियों से एक बनी थी क्योंकि **'ओम्'** सम्पूर्ण 'ध्वनि' का सम्मिलित रूप ही है। सृष्टि के आदि में वही 'एक' पुनः 'अनेक' रूपों में परिवर्तित हुई। 'ध्वनि' के इन अनेक रूपों का गहन अध्ययन कर भारतीय महा-वैज्ञानिकों ने पाया कि इन असंख्य रूपों में केवल थोड़े रूप ही मानवीय सृष्टि से सम्बन्ध रखनेवाले हैं। शेष अनन्त ब्रह्माण्ड के क्रिया-कलापों से सम्बद्ध हैं। सर्व-प्रथम उन्होंने मानवीय सृष्टि, पालन, सहार से सम्बद्ध 'ध्वनि' के रूपों की गणना की। वे **'तेंतीस करोड़'** थे, किन्तु यह विस्तृत संख्या मनुष्य की धारणा-शक्ति में समाने योग्य नहीं थी। अतः इन तेंतीस करोड़ रूपों के मूल रूप खोजने में वे तन्मय हुए। उन्होंने **'इक्यावन'** ऐसे ध्वनि-रूपों को खोज निकाला, जिनके सम्मिश्रित प्रयोग से इन तेंतीस करोड़ रूपों में से यथेच्छ ध्वनि-रूप उत्पन्न किया जा सके।

इन **'इक्यावन'** रूपों में प्रारम्भ में अन्वेषित कुल **'पच्चीस'** ध्वनि रूप हैं। इन 'ध्वनि-रूपों' को उन्होंने **'व्यञ्जन'** नाम दिया, किन्तु मानवीय किंवा अमानवीय प्रयत्नों से ये ध्वनि-रूप' प्रकट नहीं किए जा सकते। अतः इन्हें प्रगट करनेवाली शक्ति की खोज हुई। इन मूल 'ध्वनि-रूपों' का प्रगटीकरण करनेवाली **'सोलह शक्तियाँ'** उन्होंने ढूँढ़ निकालीं। ये **'सोलह'** शक्तियाँ **'स्वर'** के नाम से अभिव्यक्त की गईं। इसी अन्वेषण में इन स्वर-शक्तियों—व्यक्ति-कारक शक्तियों की छान-बीन में **'दस'** अत्यन्त महत्वपूर्ण 'स्वर' या 'ध्वनि-रूप' उन्हें प्राप्त हुए, अन्त में प्राप्त इन 'ध्वनि-रूपों' को **'अन्तःस्थ'** नाम दिया गया। इस प्रकार इनकी परिपूर्ण संख्या **'इक्यावन'** हो गई।

इन ५१ 'ध्वनि-रूपों' के पञ्च-महा-तत्त्वों पर प्रभाव का अध्ययन करते हुए उन्होंने कुछ परिणाम निकाले। उन्होंने देखा कि प्रत्येक व्यक्ति-कारक शक्ति—'व्यञ्जन-ध्वनि' किंवा 'अन्तःस्थ-ध्वनि' एक विशिष्ट महा-भूत (महा-तत्त्व) में एक विशेष प्रकार का कम्पन करती है। अतः उन्होंने निम्न प्रकार से इनका विभागीकरण किया—

५१ 'ध्वनि-तरंगों' का विभागीकरण

१ स्वर-शक्तियाँ, २ व्यञ्जन-ध्वनि, ३ अन्तःस्थ ध्वनि, ४ महा-भूत, जिन पर उक्त ध्वनि कार्य करती हैं :

स्वर	व्यञ्जन	अन्तःस्थ	महा-भूत
१ अ, आ	क, च, ट, त, प	य, स	वायु
२ इ, ई, ऋ, ॠ	ख, छ, ठ, थ, फ	र, श	अग्नि
३ उ, ऊ, लृ, ॡ	ग, ज, ड, द, ब	ल, ळ	पृथ्वी
४ ए, ऐ	घ, झ, ढ, ध, भ	व, श	जल
५ ओ, औ, अं, अः	ङ, ञ, ण, न, म	ह, क्ष	आकाश

इस प्रकार उक्त **'इक्यावन'** ध्वनि - तरङ्गों का अन्वेषण कर उन महा-वैज्ञानिकों ने इन्हीं ५१ रूपों के विभिन्न समासम - मिश्रणों के द्वारा **'पञ्च - मूल - तत्त्वों'** में कम्पन उत्पन्न कर मानव-सृष्टि से सम्बद्ध **'तेंतीस करोड़'** ध्वनि-शक्तियों का प्रत्यक्षीकरण ही नहीं किया, वरन् अनन्त ब्रह्माण्ड के सृजन, पालन एवं संहार करनेवाली महा-शक्तियों को प्रत्यक्ष करने में अभूत-पूर्व सफलता प्राप्त की।

भारतीय महा-वैज्ञानिकों की ज्ञान-पिपासा इतने से भी शान्त न हुई। वे दयार्द्र-हृदय इस प्रकार सर्व-शक्ति सम्पन्न हो भविष्य के मानवों की अल्पज्ञता से अनजान न रहे और भावी मानवों की अल्पज्ञता से द्रवित होकर उन्होंने और भी ऐसे-ऐसे आविष्कार किए कि बिना प्रयास अल्पज्ञ-से-अल्पज्ञ मानव केवल **'श्रद्धा'** एवं **'विश्वास'** का सहारा ग्रहण कर प्रकृति में इच्छित परिवर्तन ही करने में समर्थ न हो वरन् सृजन, पालन, संहार तक को अपने हाथ में ले ले। इसी निमित्त उन्होंने कुछ विशेष विधि-विधानों के साथ कुछ **'विशेष ध्वनि - रूपों'** को इस प्रकार सम्बद्ध किया कि उन विधानों के साथ, उन ध्वनियों की उत्पत्ति से, उस प्रकार का इच्छित कार्य बिना प्रयास सिद्ध हो जाए। इस प्रकार के विधि-विधानों एवं ध्वनि-रूपों के अनेक फल प्रतिपादित किए और सृजन, पालन एवं संहार-कर्मानुसार उन्हें **'शान्ति'**, **'पौष्टिक'** एवं **'अभिचार'** नाम प्रदान किए।

इधर ५१ मूल 'ध्वनि-रूपों' पर, जो **'मातृका'** के नाम से अभिव्यक्त किए गए, अन्वेषण चलते रहे। भारतीय अनुभवियों ने देखा कि प्रत्येक स्वतन्त्र एवं मिश्रित **'ध्वनि-रूप'** की एक विशेष आकृति है और वे आकृतियाँ विभिन्न महा-शक्तियों से सम्पन्न हैं। इन सम्पूर्ण आकृति-विशेषों का प्रत्यक्षी-करण कर, उनसे प्राप्त विभिन्न अलौकिक शक्तियों का परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर, उन्होंने उन्हें इस सरल सुबोध पद्धति में लिपि-बद्ध कर दिया कि भावी अल्पज्ञ-जन उनके विशिष्ट प्रयोगों से अलौकिक शक्ति-सम्पन्न हो सरलता-पूर्वक कृत-कृत्य हो सकें।

'मातृकाओं' (५१ मूल ध्वनि-रूपों) की विशद विवेचना कर विषय को जन-साधारण के लिए उन भारतीय मनीषियों ने सुबोध बना दिया, किन्तु काल-क्रम से उनके ये महान् अन्वेषण लुप्त हो गए। दैवी प्रेरणा से ५० वर्ष पूर्व एक महा-पुरुष 'कौल - कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल ने उन अन्वेषणों को उजागर करने का अभियान 'चण्डी' पत्रिका के माध्यम से चलाया और गुप्तावतार बाबा श्री, राष्ट्र-गुरु स्वामी जी एवं साक्षात् जगदम्बा-स्वरूपा माई जी जैसी विभूतियों के शुभाशीष एवं देश के सिद्ध शाक्त साधकों एवं विद्वान् मनीषियों के सहयोग से विपुल साधना-साहित्य प्रकाशित करने में सफलता प्राप्त की। 'चण्डी-कार्यालय' से सम्पर्क स्थापित कर उक्त साहित्य से कोई भी आज लाभ उठा सकता है।

वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती, परा ध्वनियों का रहस्य

आधुनिक पदार्थ-विज्ञान ने **'ध्वनि'** के जिन रूपों को प्रत्यक्ष करने के प्रयास में सफलता प्राप्त की है, वे **'ध्वनि'** के स्थूल-तम रूप हैं। उनके द्वारा प्राप्त सफलता भी अत्यन्त ही स्थूल क्रिया-कलाप हैं। अपनी स्थूलता के कारण यह सफलता सर्वदा निश्चित न रहकर, सन्दिग्ध ही रहती है। फिर किसी कार्य-विशेष के निमित्त **'ध्वनि - तरङ्गों'** के उत्पादन की उनकी विधि भी इतनी जटिल, अगम्य और अव्यावहारिक है कि उपकरणों के अभाव में प्रत्येक क्षेत्र एवं अवस्था में उसका प्रयोग ही नहीं किया जा सकता। इसके विपरीत भारतीय तत्त्व-वेत्ता महा - वैज्ञानिकों ने 'ध्वनि-तरङ्गों' के उत्पादन एवं उन्हें किसी सृजन, पालन किंवा संहार के कार्य के निमित्त प्रेरित करने की इतनी सरल, सुबोध एवं व्यावहारिक विधियों का आविष्कार किया है कि केवल **'श्रद्धा'** और **'विश्वास'** का सम्बल ग्रहण कर निर्बल-से-निर्बल व्यक्ति भी अपने लक्ष्य को सरलता से प्राप्त कर सकता है।

हमारी कर्ण - गोचर **'ध्वनि'** स्थूल - तम **'ध्वनि - तरङ्गों'** का परिणाम है। हमारे कान जिन 'ध्वनि-तरङ्गों' को ग्रहण कर सकते हैं, वे इतनी स्थूल हैं कि उनमें सृजक, पालक एवं संहारक शक्ति

अत्यन्त ही हीन अवस्था में है। इसी कर्ण-ग्राह्य स्थूल-तम **'ध्वनि'** को भारतीय महा-वैज्ञानिकों ने **'बैखरी'** नाम प्रदान किया है। इन 'ध्वनि-तरङ्गों' से सहस्र गुणा अधिक सूक्ष्म जो 'ध्वनि-तरङ्गें' हैं, उन्हें उन्होंने **'मध्यमा'** नाम दिया है। **'मध्यमा'** की लहरें आधुनिक वैज्ञानिक भाषा में कथित 'ईथर' तत्त्व में रहती हैं।

आधुनिक वैज्ञानिक अन्वेषणों का परिणाम निकला है कि 'ईथर' में व्याप्त ये लहरें--जिन्हें वैज्ञानिकों ने **'विचार से उत्पन्न कम्पन'** नाम दिया है--प्रबल-तम सर्जक शक्ति से सम्पन्न हैं। इन्हीं 'ईथर'-स्थित 'विचार-कम्पनों' के अन्वेषण का परिणाम आज के मनोवैज्ञानिक की चरम पहुँच है। ये 'कम्पन' इन्द्रिय-गम्य नहीं हैं, ऐसा आधुनिक वैज्ञानिकों का मत है--जो सत्य है। आधुनिक मनोविज्ञान कहता है कि एक ही प्रकार की विचार-तरङ्गों को बार-बार उत्पन्न कर अपने आस-पास उसी एक प्रकार की तरङ्गों का वातावरण बना लेने से वैसा ही (विचार-सत्य) हो जाता है। पाठक वैज्ञानिकों के इस निर्णय एवं भारतीय **'मानस जप'** की तुलना करने का कष्ट करें।

कुण्डलिनी-योग अर्थात् 'परा' ध्वनि की अनुभूति

भारतीय महा-वैज्ञानिक इससे भी आगे बढ़े। उन्होंने देखा—इन **'मध्यमा'** 'ध्वनि-तरङ्गों' से लक्ष-गुणा अधिक 'ध्वनि-तरङ्गें' सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का सञ्चालन करती हैं। इन 'तरङ्गों' को उन्होंने **'पश्यन्ती'** नाम दिया। लगन-शील अन्वेषक अपने अन्वेषण को करते हुए आगे बढ़े एवं 'ध्वनि' के उस परम सूक्ष्म मूल रूप को उन्होंने दृष्टि-गत किया, जो **'पश्यन्ती'** से अनन्त गुणा सूक्ष्म था एवं जिसके परे फिर कुछ नहीं था। **'ध्वनि'** के इस आदि कारण-रूप को उन्होंने **'परा'** नाम दिया।

'परा' ध्वनि ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में कल्पनातीत सूक्ष्मता में व्याप्त है और सम्पूर्ण अनन्त ब्रह्माण्डों की सृजक, पालक एवं संहारक शक्तियों की आदि-स्रोत है। सम्पूर्ण विश्व की सञ्चालिका शक्ति होने के नाते यह हमारे अपने शरीरों में भी उसी प्रकार विद्यमान है। थोड़ी तन्मयता, थोड़े अभ्यास एवं अटल निष्ठा के बल से हम उसे प्रत्यक्ष ही नहीं कर सकते, वरन् तद्-रूप होकर चिदानन्द का उपभोग कर सकते हैं। इसी महा-शक्ति के उद्-बोधन का प्रयास भिन्न-भिन्न साधनाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार से निर्दिष्ट है, किन्तु जितना स्पष्ट विवेचन---जितना स्पष्ट निरापद मार्ग-दर्शन भारतीय साधनाओं में मिलता है, वह कहीं किसी धर्म—किसी सम्प्रदाय में प्राप्य नहीं। यही कारण है कि भारत में जितनी महान् विभूतियाँ हुईं और होती रहती हैं, विश्व के अन्य भाग में दुष्प्राप्य हैं। भारत का एक साधारण साधक उन बातों का प्रत्यक्ष अनुभव आए दिन करता है, जिनकी अनुभूति विश्व के अन्य धर्मावलम्बी जब करते हैं, तो उनकी गणना महा-पुरुषों में होने लगती है! यह बात एक-पक्षीय नहीं और न यह कहकर विश्व के अन्य महा-पुरुषों का अवमूल्यन करने का ही लक्ष्य है, वरन् यह एक नितान्त 'सत्य' है—जो किसी भारतीय साधारण साधक के जीवन, अनुभूतियों एवं विचारों का निकट से अध्ययन करने के उपरान्त किसी अन्य-देशीय महा-पुरुष के जीवन का निकट से अध्ययन करने पर स्पष्ट व्यक्त हो जाता है।

भारतीय महा-वैज्ञानिकों ने उक्त 'परा'-महा-शक्ति-रूपा **'ध्वनि'** की प्रस्तुति जिस प्रकार विश्व में है, उसी प्रकार मानवीय शरीर में प्राप्त कर उसे उद्-बुद्ध करने का मार्ग निश्चित किया। ये मार्ग **'योग-चतुष्टय'** के नाम से अभिव्यक्त हुए। 'योग-चतुष्टय' एक स्वतन्त्र लेख का विषय है, किन्तु एक साधना-विशेष ऐसी भी है, जिसमें 'योग-चतुष्टय' का इतना सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है कि कोई भी निष्ठावान् साधक निरापद-रूपेण सरलता-पूर्वक एक जीवन में ही चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। वह विशिष्ट साधना है-**तन्त्र-मार्गीय शाक्त-साधना।**

'परा' की अनुभूति से सम्बन्धित साधना **'कुण्डलिनी-योग'** के नाम से पुकारी जाती है। वस्तुतः कुण्डलिनी-जागरण से ही विश्व के विभिन्न धर्मों में कथित लक्ष्य की प्राप्ति होती है। 'गीता' का स्थित-प्रज्ञ, **'बौद्ध-धर्म'** का सम्बुद्ध या जीवन - मुक्त, 'पुराणों' का परम-हंस, 'मुस्लिम-धर्म' का औलिया, या **'ईसाई-धर्म'** का लिविङ्ग ख्रीष्ट—कोई भी इस महा-शक्ति के जागरण के बिना नहीं बन सकता। ये सब अवस्थाएँ मात्र **'कुण्डलिनी-जागरण'** की अवस्था के ही भिन्न पर्याय मात्र हैं। **'परा'** महा-शक्ति से सम्बद्ध होकर प्राणी वस्तुतः कृत-कृत्य हो जाता है। **'शाक्त-धर्म'** में विशेषता मात्र इतनी है कि वह सिर के पीछे हाथ घुमाकर नाक नहीं पकड़ता, सीधा नाक पकड़ता है।

अव्यक्त 'परा-ध्वनि'-स्वरूपा महा-शक्ति का उद्‌बोधन साधन-क्रम की विभिन्नता से दस रूपों में होता है। ये ही दश-रूप **'शाक्त - धर्म'** में **'दश महा - विद्याओं'** के नाम से अभिव्यक्त हैं। 'दश-महा-विद्याओं' का सुन्दर विवेचन 'चण्डी' के 'शाक्त-धर्माङ्क' में श्रीकान्तबिहारी जी मिश्र कर चुके हैं। वह वहीं दृष्टव्य है। यहाँ केवल इतना कहना है कि ये 'दश महा-विद्याएँ' उसी अव्यक्त परमात्म परम सूक्ष्म **'ध्वनि-रूपा परा-कुण्डलिनी'** के ही विशेष-रूप हैं। शोधात्मक अनूठे ग्रन्थ **'मन्त्र-कोष'** में इन सबका शोधात्मक परिचय इनके विविध मन्त्रों के सहित सङ्कलित है।

'शाक्त-साधना' वाह्य एवं आभ्यन्तरिक क्रियाओं का पूर्ण वैज्ञानिक मिश्रण कर ऐसा साधन-पथ प्रदर्शित करती है कि लगन-शील व्यक्ति अनायास ही—यदि वह निष्ठा-पूर्वक अपने क्रम को पूर्ण शास्त्रीय विधान से पूरा करता गया—निश्चित रूप से पर-तत्त्व-स्वरूपा **'परा-ध्वनि'** को उद्‌बुद्ध करने में सफल हो जाता है। 'परा' से परिचय होने के साथ ही **'पश्यन्ती'** पर उसका पूर्ण अधिकार हो जाता है एवं इस विश्व में ही नहीं, अनन्त ब्रह्माण्डों में वह सृजन, पालन एवं संहार की शक्ति से सम्पन्न हो जाता है। यह केवल अथ-वाद नहीं है, भारत में इस प्रकार की शक्ति से सम्पन्न महा-पुरुषों के दिव्य दर्शन मिलने का सौभाग्य आज भी मिल जाता है।

अव्यक्त **'परा-ध्वनि'** से सम्बद्ध होना तो चरम लक्ष्य है ही, किन्तु **'पश्यन्ती'** एवं **'मध्यमा'** ही नहीं, **'वैखरी'** में भी अनेक ऐसी **'ध्वनि-तरङ्गों'** का आविष्कार भारतीय ऋषि कर गए हैं, जिनका सम्यक् विधि-विधान से प्रयोग करने पर मनुष्य अत्यल्प-काल में अति-मानवीय शक्ति से सम्पन्न होकर आत्म-कल्याण एवं लोक-कल्याण कर सकता है। श्री दुर्गा-सप्तशती, रुद्राष्टाध्यायी, पुरुष-सूक्त, देवी-सूक्त एवं विभिन्न वैदिक सूक्त इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं, जो आज भी **'वैखरी-ध्वनि'** में ही अपनी विशिष्ट विधियों के साथ उच्चारित होकर अति-मानवीय कार्य सम्पादन करते रहते हैं।

हिन्दू-राज्य-काल में ही नहीं—विधर्मी मुगल एवं ब्रिटिश काल में भी 'शाक्त-साधना' द्वारा राष्ट्र-रक्षा, ईति-भीति से रक्षा एवं लोक-कल्याण होता रहा है। स्वधर्म-प्राण मुगल-शासकों ने भी इनके अद्‌भुत प्रभावों को देखकर सिर झुकाया है, किन्तु आज तो हम पर पाश्चात्य सभ्यता का वह 'भूत' चढ़ा हुआ है कि भारत की सभी वस्तुएँ व्यर्थ, झूठी, आडम्बर एवं पाश्चात्यों की प्रत्येक वस्तु सत्य उपयोगी और श्रेष्ठ प्रतीत होती है! इस विपरीत मति का क्या परिणाम होगा, जगदम्बा ही जाने।

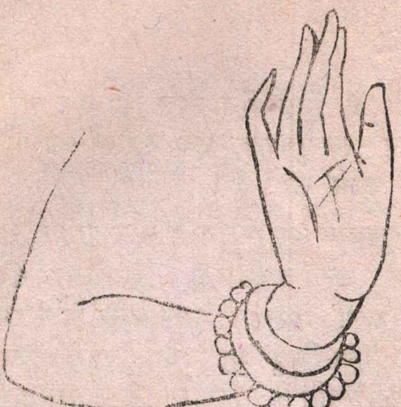

समस्त शास्त्रों
के
सार-स्वरूप

'मन्त्र-शास्त्र'

का

वर्णन

'मन्त्र-शास्त्र' समस्त शास्त्रों का सार है। इस शास्त्र का वर्णन इस प्रकार है--**'शक्ति'** के दो रूप हैं: १ निराकार, २ साकार। वह **'शक्ति'** निराकार-रूप में चित्स्वामिनी कही जाती है, जो चराचर में व्याप्त है। देव, दानव, मानव आदि सब **'शक्ति'** की ही कृतियाँ हैं। उसका पूर्ण स्वरूप कोटि-कोटि सूर्य, चन्द्र के तेज के समान ज्योतिर्मय एक **'विन्दु'** है। **'शक्ति'** का तेज **'आत्मा'** के रूप में मानव शरीर में विद्यमान है। वास्तव में **'आत्मा' 'परमात्मा की चैतन्य शक्ति'** का सूक्ष्म निराकार रूप है, जिसे वेदान्ती प्रथमावस्था में **'द्रष्टा'** कहते हैं।

यहाँ **'निराकार'** अपनी स्वतन्त्रता के आनन्द में मग्न होकर स्वेच्छा से अपने को उतरोत्तर विकसित करता हुआ, निज विलासानन्द की अनुभूति के लिए सर्वथा **'कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तम् समर्थः'** होने के कारण स्वयं ही **'साकार - स्वरूप'** धारण कर लेता है। यथार्थ में **'साकार'** एवं **'निराकार'** उस सर्व-समर्थ शक्ति का विलास-मात्र ही है।

'निराकार' को **'सूक्ष्म'** एवं 'साकार' को **स्थूल,** 'निराकार' को **'विन्दु'** तथा 'साकार' को **'विमर्श'**, 'निराकार' को नित्य और 'साकार' को अनित्य आदि विशेषण **'शब्द-ब्रह्म-शक्ति'** का प्रतिपादन करते हैं, परन्तु जब कोई साधक **'परा - वाणी'** में प्रवेश कर देखता है, तो अपने को अवाच्य, अचिन्त्य, अवाङ्-मनस्-गोचर कह कर मौन हो जाता है। तब वह शक्ति मन्द मुसकराती हुई अपना कुछ-कुछ परिचय 'शब्द-ब्रह्म' को देती है, जिसके एक विन्दु के केवल आभास-मात्र से 'शब्द-ब्रह्म' अनन्त-अनन्त कहकर नाचता हुआ महा-भाव को प्राप्त होकर निस्तब्ध हो जाता है।

मूल तत्त्व अजा **'आद्या-शक्ति'** है। वह अनन्त और अव्यक्त है। **'शाक्तागम'** से लेकर **'वैष्णवागम'** एवं **'वैखानस आगम'** तक सम्पूर्ण आगम-साहित्य में उसी अव्यक्त को प्रकट करने की चेष्टा की गई है। **'आगम'** का विशेष महत्त्व इसी में है। उस अज्ञेय एवं अव्यक्त 'शक्ति' के प्रत्येक विकास में एक ही परम तत्त्व का स्वतः आगम होता रहता है। इसी हेतु इसे 'आगम' भी कहते हैं। इस परम-तत्त्व को **'शिव--ईश्वर'** कहते हैं।

उदाहरण-रूप में आदि-लीला में ब्रह्मा जी, तप के प्रभाव से जैसी सृष्टि चाहते थे, वैसी कर लेते थे परन्तु उसकी अभिवृद्धि नहीं होती थी। अतः 'शक्ति' ने विमर्श एवं स्फूर्ति का रूप धारण किया तथा शिव ने प्रकाश-रूप में उसमें प्रवेश किया। परिणाम-स्वरूप 'विन्दु' का प्रादुर्भाव हुआ। इसी प्रकार 'स्त्री-शक्ति' ने 'पुरुष-शिव' में प्रवेश किया, जिससे वह 'विन्दु' समुन्नत हुआ तथा इस संयोग से 'नाद'-

तत्त्व की उत्पत्ति हुई। ये दोनों '**नाद**' एवं '**विन्दु**' दूध और पानी के समान ऐसे मिले कि एक रूप हो गए तथा 'संयुक्त विन्दु' '**अर्द्ध-नारीश्वर**' नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह तत्त्व पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व--उभय के बीच अत्यन्त आसक्ति को प्रकट करता है। इसी अभिप्राय से इसे '**काम**' कहते हैं।

पुनः दो 'विन्दु', जिनमें से एक '**श्वेत**'-वर्ण का है, जो पुरुषत्व का बोधक है और दूसरा 'रक्त' वर्ण का है, जो स्त्रीत्व का परिचायक है। इन दोनों से '**कला**' की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार तीनों विन्दु—१ संयुक्त विन्दु 'काम', २ श्वेत-विन्दु और ३ रक्त-विन्दु--'**कला**' मिलकर '**काम-कला**' में परिणत हुए। 'काम-कला' को लेकर चार शक्तियों का एकत्री-करण हुआ। '**मूल-विन्दु**' वह विशेष तत्त्व है, जिससे जगत् की रचना हुई, दूसरा '**नाद**' है—जिसके ऊपर 'विन्दु' की क्रमोन्नति के परिणाम से उत्पन्न द्रव्यों का नामकरण अवलम्बित है। इन दोनों में परस्पर अत्यन्त आसक्ति है, परन्तु वह आसक्ति सृष्टि-विस्तार-हीन है क्योंकि ये दोनों 'ऋत्' एवं 'वाङ्'-मय हैं। तीसरा श्वेत-वर्ण 'पुं'-'विन्दु' स्वतः उत्पत्ति करने में असमर्थ है, वह चौथे रक्त-वर्ण 'स्त्री'-विन्दु से संयोजित होता है। जब ये चारों तत्त्व मिलकर '**काम-कला**' में प्रवृत्त हुए, तब सम्पूर्ण शाब्दिक एवं वास्तविक सृष्टि उत्पन्न हुई।

किसी-किसी आगम में सर्व-श्रेष्ठ देवी '**काम-कला**' के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि 'सूर्य'-संयुक्त 'विन्दु' ही उसका वदन है, 'अग्नि' एवं 'चन्द्रमा'—'रक्त' और 'श्वेत' विन्दु ही उसके वक्ष-स्थल हैं तथा 'अर्द्ध-कला' जननेन्द्रिय है। इस विचार-सरणि से 'गर्भ' की स्थिति सु-स्पष्ट होती है, जिससे सृष्टि का विकास होता है।

सृष्टि-विधायिनी एक-मात्र महा-महिमावती '**शक्ति**' ही है। संस्कृत का प्रथम अक्षर '**अ**' शिव का प्रतीक है तथा अन्तिम अक्षर '**ह**' शक्ति का। इसी '**ह**' को **अर्द्ध-भाग** कहते हैं। इसी से यह स्त्री-तत्त्व है, गर्भाशय है, अर्थात् '**ह**' और शिव-स्वरूप '**अ**' का सम्मिलन ही '**काम-कला**' का स्वतः विकास है। प्रथम अक्षर '**अ**' और अन्तिम अक्षर '**ह**' बीच के सपूर्ण अक्षरों को अपने में समावेशित किए हुए हैं तथा उनके द्वारा बने हुए सम्पूर्ण शब्दों को भी। इसी से 'वाङ्-मय' को भी उस '**महा-शक्ति**' का स्वरूप कहा गया है। उसी का स्वरूप '**परा**' है अर्थात् वाणी चार प्रकार की है—१ परा, २ पश्यन्ती, ३ मध्यमा और ४ वैखरी।

परादि वाणी से '**ईक्षणा**' होती है। 'ईक्षणा' से '**अहं**' का 'प्रकाश' होता है। उसके साथ ही 'अस्मिन्' का 'विमर्श' होता है, जो स्वतः ही हो जाता है। 'ईक्षण' के द्वारा आविर्भूत होने के कारण उक्त 'प्रकाश' तथा 'विमर्श'—दोनों ही '**शक्ति**' के ही प्रसार हैं। 'शक्ति' का यह स्वरूप निषेध-व्यवहार-रूप है क्योंकि इस अवस्था में निष्कल ब्रह्म सकल बन जाता है। 'शक्ति' और 'शिव' की यह संश्लिष्ट अवस्था ही सृष्टि-रचना का कारण-भूत है।

'ईक्षणा' के पश्चात् निष्क्रिय ब्रह्म के सक्रिय अवस्था में आने के लिए 'शक्ति' और 'शिव' का संयोग होता है। उनका पारस्परिक सम्बन्ध ही 'नाद' कहलाता है। 'शिव' और 'शक्ति' की उस अवस्था में इनका निर्वचन हो सकता है। जिसके परे कुछ भी नहीं है, वह अपनी इच्छा से अखिल विश्व की सृष्टि करने के लिए स्पन्दित होता है। उसका वह प्रथम 'स्पन्द' ज्ञानी पुरुषों के द्वारा 'शिव-तत्त्व' कहा जाता है अर्थात् 'अ' अक्षर कहलाता है। वह शुद्ध 'ईक्षा-रूपी' शक्ति जो, शिव के साथ रहती है, अपने भीतर लीन चराचर विश्व का बीज-रूप है।

'शिव' और 'शक्ति' को सांख्य-शास्त्र की परिभाषा में 'पुरुष' और 'प्रकृति' कहते हैं और इनसे संयुक्त 'नाद' को 'सदाख्य तत्त्व'। 'ईक्षण' में जब 'अहं' का प्रकाश होता है, तब 'शिव' निष्क्रिय रहता है तथा 'शक्ति' सक्रिय। इनका जो 'मिथः-समवाय' होता है, वही 'नाद'-तत्त्व है। इस 'मिथः-समवाय' को तन्त्र की भाषा में 'महा-काल' और 'महा-काली' की विपरीत 'रति' कहा गया है। इसी को 'शिव-शक्ति-समागम' भी कहते हैं।

'अहम्'-प्रकाश में शिव का तथा 'अस्मिन्' - विमर्श में शक्ति का तादात्म्य-सम्बन्ध होता है। सक्रिय शक्ति एवं क्रिया - शक्ति के साथ जो 'नाद' उत्पन्न होता है, उसे 'अव्यक्त' कहते हैं। उसी को 'अजपा' कहते हैं। इसी के द्वारा सहज प्रापञ्चिक संसरण से शक्ति के प्रभाव को मोड़कर उससे अखण्ड उद्गम-स्थान निष्कल ब्रह्म की ओर ले जाना पड़ता है।

'हं' शिव पुरुष-तत्त्व है और 'स' शक्ति-तत्त्व। इन दोनों को उल्टा करने से 'सोहं' बन जाता है, जो प्रपञ्च से परा-वाक्य तथा पर-ब्रह्म की ओर ले जाता है। यही 'सोहम्'-साधना 'अजपा' है। प्रवाह को विपरीत दिशा में ले जाना ही 'सोहम्' - साधना के श्रम-साध्य होने का कारण है। इस क्रिया में जब द्रष्टा-दृश्य—'शिव-शक्ति' तथा 'अहं-इदम्' का एकीकरण हो जाता है, तब साधक को 'नाद' की अनुभूति होती है। शक्ति से जो अभिन्न रहती है, वह 'उन्मना-शक्ति' कहलाती है तथा जो शिव के साथ रहती है, उसे 'समना-शक्ति' कहते हैं।

आकर्षणात्मक 'हं' और विकर्षणात्मक 'स'—इन दो अक्षरों के सहयोग से 'हंस' शब्द की उत्पत्ति होती है। उसे ही हंस-मन्त्र, सोऽहं-मन्त्र, अजपा-मन्त्र, अजपा-गायत्री, आत्म-मन्त्र, अनाहद-मन्त्र, पुं-प्रकृति-मन्त्र, ब्रह्म-मन्त्र, जीव-मन्त्र, प्राण-मन्त्र, विद्या-मन्त्र, दिन-नित्या आदि नामों से कहा गया है। समस्त भावों के मनन का द्वार और सम्पूर्ण संसार का प्राण होने के कारण यह मन्त्र त्राण-रूपिणी शक्ति का कार्य करता है।

मननात् सर्व-भावानां, त्राणात् संसार-सागरात्। मन्त्र-रूपा च तच्छक्तिः, मनन-त्राण-रूपिणी ॥

'हं' और 'स' को उलट देने से 'सोऽहं' बन जाता है। 'सोऽहं' से 'स' और 'ह' को अपहरित कर लेने पर केवल प्रणव 'ॐ' बच जाता है। वर्तमान युग में प्रणव के स्वरूप को बहुत कम लोग जानते हैं। अधिकतर लोग तो ॐकार के उच्चारण को या मन-ही-मन में जप करने को 'प्रणव' का साधन समझते हैं, परन्तु उपनिषदों के कथनानुसार 'ॐ-कार' का उच्चारण नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह स्वर या व्यञ्जन नहीं है तथा वह कण्ठ, ओष्ठ, नासिका, जिह्वा, दन्त-मूर्द्धादि के योग से या उनके घात-परिघात से उच्चरित नहीं होता है।

अघोषमव्यञ्जनमस्वरं च, अकण्ठ-ताल्वोष्ठमनासिकञ्च।
अरेफ-जातो पयोष्ठ-वर्जितं, यदक्षरो न क्षरते कदाचित् ॥१

इसी प्रणव से सब स्वर और व्यञ्जनों की उत्पत्ति होती है। नाद-मन्त्र-विद्या, साहित्य तथा सङ्गीत की उत्पत्ति नाद से ही होती है। जब कोई वस्तु हिलती है, उससे तथा किसी अकृत-नाद, अव्यक्त कम्पन-समूह को 'नाद' तथा 'शब्द' कहते हैं। कान से सुनाई देनेवाले नाद को 'श्रव्य' कहते हैं। जीव-तन्तु की अव्यक्त ध्वनियाँ कम्पन-शब्द से बनती हैं तथा जड़-जन्य में उत्पन्न होनेवाले अव्यक्त कम्पन को 'ध्वनि' कहते हैं। अचूक रीति से श्रव्य कम्पन का आकलन करना 'श्रुति' कहलाता है—'**श्रूयते इति**

श्रुतिः ।' कान जिन ध्वनियों को सुन सकें—स्पष्ट रूप से ग्रहण कर सकें, जिनके स्पष्ट उच्चारण पृथक् रूप से ज्ञात हो सकें, ऐसी अव्यक्त ध्वनियों को ही 'श्रुति' कहते हैं।

नाद के योग से स्वर - व्यञ्जन अक्षरों का उच्चारण होता है। स्वर-व्यञ्जन के सहयोग से शब्द बनता है। शब्द-समूह से 'वाच्' अर्थात् भाषा बनती है। भाषा से ही जगत् का व्यवहार चलता है। इसलिए यह सम्पूर्ण जगत् ही नाद-ध्वनि है। वाक्य भाषा का भाग है। वाक्यों को नियमित रूप से अर्थ-सहित रखना वाङ्-मय' है, चतुराई से बना हुआ भाव भावना-मय है। वाङ्-मय या 'साहित्य-सङ्गीत' अव्यक्त नाद के समूह से ही बनता है।

'नाद' दो प्रकार के होते हैं—**१ आहत, २ अनाहत। 'अनाहत नाद'** सङ्कट - मोचक तथा मुक्ति-दायक होता है, परन्तु वह मनोरञ्जन नहीं करता। इसी नाद से **'मन्त्र-विद्या'** का निर्माण हुआ है। **'मन्त्र-विद्या'** को सिद्ध करने के लिए सद्-गुरु द्वारा बताए हुए **'अनाहत नाद'** के अनुसार ही चलना पड़ता है।

सच्चिदानन्द-घन-विभव अर्थात् 'सकल परमेश्वर' से 'शक्ति' उत्पन्न हुई। 'शक्ति' से 'नाद', 'नाद' से 'विन्दु' की उत्पत्ति हुई, परन्तु यह विन्दु क्या वस्तु है? गणित - शास्त्र में 'विन्दु' की परिभाषा है— जिसका कोई परिमाण न हो, परन्तु स्थान नियत हो। तन्त्र - शास्त्र का विन्दु - तत्त्व विलक्षण ही है। उसके अनुसार 'विन्दु' शक्ति की एक विशेष अवस्था है, जहाँ से इसका 'सृष्टि - क्रम' प्रारम्भ होता है। विन्दु से क्रमशः कार्य-विन्दु, उससे नाद, नाद से बीज--ये तीन रूप होते हैं।

महा-विन्दु ही शव-रूपी सदा-शिव है। उसके ऊपर चित्-कला अथवा चिच्छक्ति स्वतन्त्र होकर खेलती है। यह खेल परा-वाक्य अथवा परा-मात्रा का विलास है। शुक्ल तथा रक्त - विन्दु - रूपी प्रकाश-विमर्शात्मक 'काम-कला' अक्षर के परस्पर सङ्घट्ट से 'चित्-कला' की अभिव्यक्ति होती है, जो पूर्ण-हन्ता अथवा परा-वाक्य-विभाव-दशा में ही 'पश्यन्ती' आदि तीन रूप धारण करती है। प्रत्येक रूप में स्थूल, सूक्ष्म तथा पर-भेद से तीन अवस्थाएँ हैं। परम-तत्त्व नीरस प्रकाश-स्वरूप है। फिर भी तीन शक्तियों के भेद के कारण उसके तीन विभाग हैं—१ परा तथा अनुत्तर-रूपा, जिसका नाम है--'चिच्छक्ति'। २ परा-परा, जिसे 'इच्छा-शक्ति' कहते हैं। ३ अपरा, जो उन्मेष-रूपा 'ज्ञान-शक्ति' है।

निराकार तेज के 'विन्दु' से 'मातृका' की उत्पत्ति होती है। 'मातृका' में 'स्वर' और 'व्यञ्जन' सब मिलाकर ५१ हैं। ये मातृकाएँ सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि की रश्मियों में व्याप्त हैं और आकाश के वाता-वरण को पार करती हुई पृथ्वी पर गिरकर अनेक कौतूहल उत्पन्न करती हैं। ये शरीर के प्रत्येक भाग में व्याप्त हैं।

मानव के प्रत्येक अङ्ग का रोम - रोम एक-एक ब्रह्माण्ड माना गया है, जिसकी पृथक् - पृथक् मातृकाएँ हैं। इनके ही साक्षात्कार को स्वयं का जानना कहते हैं। ग्रन्थों में वर्णित देवता तथा उनके लोक—सभी मानव-शरीर में उपस्थित हैं। उन्हें जानना अपनी आत्मा का साक्षात्कार कर उसका सम्बन्ध बाह्य प्रकाश से कर देना--सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना ही मनुष्य का ध्येय है।

सृष्टि, स्थिति, संहार आदि अनेक क्रम ही इस विराट् विश्व की रचना के मूल कारण हैं। इसी से मातृकाओं द्वारा सृष्टि, स्थिति और संहार - न्यासों का अनिवार्य विधान साधना में निर्दिष्ट है। मातृका-स्फोट ही विश्व के स्फोट हैं। मातृका - विद्या ही परा-विद्या है। मातृका-ज्ञान ही महा-विज्ञान है, जिसे मन्त्र-शास्त्र के द्वारा ही जाना जा सकता है। 'मातृका' तीन प्रकार की होती है। यथा—

१--साङ्केतिक मातृका : पशु-पक्षो, वृक्षादि की भाषा तथा मनुष्यों की चेष्टा तथा इङ्गित (सङ्केत) की भाषाएँ। प्रत्येक प्राणी के द्वारा तथा विविध प्रकार के वृक्षों के सङ्घर्षण से पृथक् - पृथक् ध्वनि होती है। इन ध्वनियों के अलग-अलग नाम सङ्गीत के स्वरों में बताए गए हैं।

२--लिपि मातृका : प्रत्येक देश-देशान्तर की भाषाएँ एवं अन्य विविध भाषाएँ।

३--मन्त्र-शास्त्र-सम्बन्धित मातृका : प्रत्येक देवी-देवता को प्रतिभासित करनेवाली।

हमारा मन्तव्य यहाँ मन्त्र-शास्त्र की मातृकाओं से है। ये मातृकाएँ अपने पूर्वोक्त उद्गम से निकलकर सूक्ष्म-स्वरूप में आकाश से ईथर में होकर भू-मण्डल एवं पाताल में व्याप्त हैं। यह पृथ्वी चार भागों में विभक्त है--१ रत्न-गर्भा, २ अन्नौषधि-गर्भा, ३ जीव-गर्भा और ४ ऊसर। अपने गुणों एवं प्रकृति के अनुसार ही ये भाग जो गर्भ धारण करते हैं, उनमें बहुत कुछ विविधता उत्पन्न होती है। यथा--

कदली सुक्ती साँप-मुख, एक बूँद गुण तीन।

उदाहरण के लिए केवल सूर्य में से प्रकाशित सूर्य की रश्मि पृथ्वी में माणिक का गर्भाधान करती है। सूर्य की वही रश्मि चन्द्रमा के साथ होने से मोती का गर्भाधान करती है। कारण यह है कि सूर्य रक्त-वर्ण है और चन्द्रमा श्वेत - वर्ण। दोनों के सामञ्जस्य से सूर्य - रश्मि दो प्रभाववाली हो गई, जिससे दो विशेषताएं मोती में हो गईं—एक श्वेत रङ्ग, दूसरा प्रकाश; एक चन्द्र - गुण दूसरा सूर्य-गुण। इसी प्रकार मङ्गल के साथ होने से मूँगा, बुध के साथ होने से पन्ना, गुरु (बृहस्पति) के साथ होने से पुख-राज, शुक्र के साथ से हीरा और शनि के साथ से नीलम आदि।

उक्त रश्मियाँ ग्रह, नक्षत्र, योग, करण, पञ्च-भूत, तन्मात्रा, त्रिगुण एवं स्वभाव आदि के साथ नई-नई वस्तुओं का सृजन करती हुई तथा परस्पर सम्बन्ध स्थिर करती हुई दस प्रकार की सृष्टि, चार प्रकार के जीव (अण्डज, स्वेदज, उद्भिज, जरायुज) तथा सर्व - सृष्टि के जड़ - चैतन्य - विभाग आदि का निर्माण तथा सृजन स्वाभाविकता से करती रहती हैं। यह सब मातृका का नैसर्गिक विलास है, जो स्वेच्छा से ही हो रहा है। इस विलास के तारतम्य को 'विश्व-प्रकाश' कहते हैं—

या सा तु मातृका देवी, पर - तेज - समन्विता। तया व्याप्तमिदं विश्वं, स-ब्रह्म-भुवनान्तकम्॥

जैसे एक वट-वृक्ष के छोटे-से बीज में बरगद का बहुत विशाल वृक्ष अन्तर्निहित रहता है, वैसे ही मातृकाएँ भी ब्रह्मा से कीट-पर्यन्त स्थावर, जङ्गम, अणु, परमाणु आदि सबमें ओत - प्रोत हैं। जिसने जितने अंश में उनका स्फोट कर लिया—साक्षात्कार कर लिया, उसने उतने ही अंशों में सफलता प्राप्त कर ली। ब्रह्माण्ड-सृजन के उद्गम का कारण यही है। इसे ही **'अहं'** और **'इदं'** कहा जाता है।

यह **'मातृका - विज्ञान'** समस्त शास्त्रों को अपने ज्ञान से प्रकाशित करता है। शब्द - शास्त्र (व्याकरण), ज्योतिष, योग आदि दर्शन की विविध प्रक्रियाएँ इसकी मुख्य मार्ग-प्रदर्शिका हैं। इन सबमें 'मन्त्र-शास्त्र' विशेष उपादेय है, जिसका एक-मात्र प्रतिपाद्य विषय 'मातृका' ही है! 'मातृका - स्फोट' ही विज्ञान है, जिसका साधन 'मन्त्र-साधना' द्वारा ही किया जा सकता है। 'मन्त्र-शास्त्र' में वर्णित 'मातृका' अनेक प्रकार की है--१ भूतलिपि, २ मालिनी, ३ पञ्च-भूत, ४ मधु-मति और ५ अङ्ग-मातृका आदि।

उक्त 'भूत-लिपि' आदि मातृकाओं के भी अनेक भेद हैं, जिनकी संख्याएँ हैं--भूत - लिपि ४२, मालिनी ४९, पञ्च-भूत ५०, मधु-मती २०४, अङ्ग-मातृका २५५ तथा मुख्य मातृका ५१।

(शेष पृष्ठ ६८ के नीचे)

'मन्त्र-साधना' के अंग

'**मन्त्र-शास्त्र**' के विषय में 'योग-तारावली' ग्रन्थ में भगवान् शङ्कराचार्य ने कहा है--

सदा-शिवोक्तानि स-पाद-लक्ष-लयावधानानि वसन्ति लोके ।
नादानुसन्धान-समाधिमेकं, मन्यावहे मान्य-तमं लयानाम् ।।
नादानुसन्धान ! नमोऽस्तु तुभ्यं, त्वां मन्महे तत्त्व-पदं लयानाम् ।
भवत्-प्रसादात् पवनेन साकं, विलीयते विष्णु-पदे मनो मे ।।
सर्व-चिन्तां परित्यज्य सावधानेन चेतसा । नाद एवानुसन्धेयो योग-साम्राज्यमिच्छता ।।

अर्थात् 'योग-शास्त्र' के प्रवर्तक भगवान् शिव जी ने मन के लय होने के सवा लक्ष साधन बतलाए हैं । उन सबमें '**नादानुसन्धान**' सबसे सुलभ और श्रेष्ठ है । 'हे नादानुसन्धान ! आपको नमस्कार है, आप परम-पद में स्थित कराते हैं । आपके ही प्रसाद से प्राण-वायु और मन--ये दोनों विष्णु के परम-पद में लय हो जायँगे । योग-साम्राज्य में स्थित होने की इच्छा हो, तो सब चिन्ताओं को त्याग कर सावधान होकर एकाग्र-मन से अनाहत-नादों को सुनो ।'

(पृष्ठ ६७ का शेषांश)

जिस प्रकार आयुर्वेद में वात, पित्त और कफ—ये तीन प्रधान विषय हैं, उसी प्रकार मातृकाओं में भी सत्, रज और तम तीनों गुण हैं । ये तीनों गुण सूर्य, चन्द्र और अग्नि के रूप में हैं, जो जगत् को प्रतिभासित करते हैं । इन तीनों का विस्फोट होते-होते इसके ६३ भेद हो जाते हैं । आयुर्वेद में ६ रस हैं, जिनका स्फोट होते-होते ६२ भेद हो जाते हैं । केवल 'वात', 'पित्त' तथा 'कफ' के वैचित्र्य या वैलक्षण्य का प्रतिपादन करते-करते एक शास्त्र तैयार हो गया, जिसे 'आयुर्वेद' कहते हैं । नौ ग्रह, द्वादश राशि, २७ नक्षत्रों के प्रतिपादन एवं प्रसार में 'ज्योतिष-शास्त्र' बन गया, जिसके ४ लाख ग्रन्थ हैं । इसी प्रकार ५१ मातृकाओं के विषय का स्फोट करते-करते एक बहुत बड़ा '**मन्त्र-शास्त्र**' निर्मित हो गया ।

अब संक्षेप में '**पारायण**' के विषय में लिखता हूँ । 'सौभाग्य-रत्नाकर' में ३६ 'पारायण' बताए हैं । प्रथम पारायण 'अङ्ग-पारायण' है, जिसकी महिमा में कहा है कि '**अङ्ग-हीनस्तु न क्षमः**'--अङ्ग-हीन किसी कार्य में समर्थ नहीं होता । '**अङ्ग-हीना भवेन्नाशं सर्वथा परमेश्वरि**' अर्थात् अङ्ग-हीन होने से सर्व-नाश हो जाता है ।

'अङ्ग - पारायण' - युक्त २५,००० माला जपने पर सभी मन्त्र प्रायः सिद्ध हो जाते हैं । गुरु, देवता, मन्त्र और अपने में ऐक्य-भाव की भावना करते हुए ही जप करना चाहिए क्योंकि गुरु, शिष्य, मन्त्र एवं देवता का ऐक्य-भाव न होने से मन्त्र सिद्ध नहीं होता ।

'**मातृका-स्फोट**' से दैवत्व और दैवत्व से पूज्यत्व प्राप्त होता है । पूज्यत्व में अपनी मातृकाओं का स्फोट करके देवता के अङ्ग-उपाङ्गों में अवस्थित देव-मातृकाओं का पूजन किया जाता है । अपनी स्फोट की हुई देव-मातृकाओं में मानवीय मातृकाओं का समावेश किया जाता है । उनके स्वरूप, नाम, आयुध और वाहन—सब पृथक्-पृथक् होते हैं । उन सबकी पूजा की जाती है । एक ही देव अपनी शक्ति से अनेक हो जाता है । उस समय उसका स्वरूप, नाम, मातृका, वाहन आदि पृथक् - पृथक् हो जाते हैं । साधक वाञ्छित स्वरूप से तादात्म्य करने के लिए तत्सम्बन्धी नाम-रूप-आयुध का ही ध्यान करता है ।

प्रत्येक मनुष्य की देह में लगभग साढ़े तीन कोटि रोम हैं। 'वायु'-प्रकृतिवाला साधक जब साढ़े तीन कोटि मन्त्र-जप कर लेता है, तब उसे **'अनाहत नाद'** की अनुभूति होती है, किन्तु 'पित्त'-प्रकृतिवालों की नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं। अतः उन्हें केवल सवा कोटि मन्त्र - जप करने ही से **'अनाहत नाद'** का ज्ञान हो जाता है।

'मन्त्र-जप' में 'मन्त्र-साधन' के अङ्गों पर ध्यान देना आवश्यक है क्योंकि अङ्गों के साथ जप करने से बहुत शीघ्र फल मिलता है। ये अङ्ग १६ हैं। यथा--

(१) **भक्ति--(क) गौणी** (साधन-काल की भक्ति)। **(ख) परा** (सिद्ध अवस्था की भक्ति)।

'गौणी' का भेद है--**'वैधी'**, जो नवधा है। **'परा'** का भेद है—**'रागात्मिका'**। **'नवधा'** और **'रागात्मिका'** का विस्तार इस प्रकार है--

वैधी (नवधा भक्ति)--१ श्रवण, २ कीर्तन, ३ स्मरण, ४ पाद-सेवन, ५ अर्चन, ६ वन्दन, ७ दास्य, ८ सख्य, ९ आत्म - निवेदन। क्रमाङ्क १ से ६ की भक्ति प्रथम अवस्था की भक्ति हैं। क्रमाङ्क ७-८-९ इन तीनों की परिसमाप्ति **'रागात्मिका'** में होती है।

रागात्मिका (क) सात गौण रस—१ हास्य (गोपाल बालक), २ वीर (भीष्म पितामह), ३ करुण (दशरथ), ४ अद्भुत (बलि, अर्जुन, यशोदा), ५ भयानक (कंस), ६ वीभत्स (अघासुर), ७ रौद्र (इन्द्र)।

(ख) सात मुख्य रस—१ दास्य (श्री हनुमान), २ सख्य (अर्जुन, उद्धव), ३ वात्सल्य (दशरथ, कौशल्या, नन्द-यशोदा), ४ कान्ता (व्रज-गोपी), ५ आत्म-निवेदन (श्रीनारद), ६ गुण-कीर्तन (श्रीव्यास), ७ तन्मया शक्ति (श्रीहरि, श्रीहर, श्रीराम-कृष्ण-देव)।

(२) **शुद्धि—(क) शरीर - शुद्धि**--१ मान्त्र, २ भौम, ३ आग्नेय, ४ वायव्य, ५ दिव्य, ६ वारुण्य, ७ मानस।

(ख) मन-शुद्धि--दैवी सम्पत्ति के अभ्यास से।

(ग) दिशा-शुद्धि--पूर्व-उत्तर-मुख बैठकर मन्त्र-जप-ध्यान करने से।

(घ) स्थान-शुद्धि—गो-मय से अथवा १ पीपल, २ बरगद, ३ अशोक, ४ बिल्व, ५ आँवला के नीचे बैठकर 'मन्त्र-जप' आदि करने से।

(३) **आसन**--१ स्वस्तिक, २ परमासन।

(४) **पञ्चाङ्ग-सेवन**—१ चण्डी, गीता, २ सहस्र - नाम, ३ स्तव, ४ कवच, ५ हृदय का पाठ।

(५) **आचार**--१ दिव्य, २ वाम, ३ दक्षिण।

(६) **धारणा**--१ अन्तर्धारणा, २ बहिर्धारणा।

(७) **दिव्य देश-सेवन**--१ अग्नि, २ जल, ३ लिङ्ग, ४ स्थण्डिल, ५ कुण्ड, ६ पट, ७ मण्डल, ८ विशिख, ९ नित्य-यन्त्र, १० भाव-यन्त्र, ११ पीठ, १२ विग्रह, १३ विभूति १४ नाभि, १५ हृदय, १६ मूर्धा।

(८) **प्राण-क्रिया**—१ प्राणायाम, २ कर-न्यास, ३ अङ्ग-न्यास, ४ मातृका-न्यास, ५ ऋष्यादिन्यास

(९) **मुद्रा**--अपने-अपने इष्ट-देव की पृथक्-पृथक् मुद्रा।

(१०) **तर्पण**--१ अपने इष्ट-देव का तर्पण, २ अन्य देव-देवियों का तर्पण, ३ ऋष्यादि तर्पण, ४ पितृ तर्पण। (११) **हवन**, (१२) **बलि**, (१३) **याग**-१ अन्तर्याग, २ बहिर्याग, ३ उप-याग। (१४) **जप**—१ वाचिक, २ उपांशु, ३ मानस। (१५) **ध्यान**—अपने-अपने इष्ट-देव के रूप का ध्यान। (१६) **समाधि—महा-भाव**।

मन्त्र-सिद्धि के लक्षण

'**मन्त्र-सिद्धि**' हुई या नहीं, इसके प्रति थोड़ा ध्यान देने से साधक स्वयं समझ सकता है। अकल्पित रूप से मन-चाहे कामों का होना, दुर्घटना से बाल-बाल बच जाना, जिसे देखना चाहे—वह अचानक आ पहुँचे अर्थात् आशातीत बातों का होना '**मन्त्र-सिद्धि**' के ही लक्षण हैं। इसी प्रकार विपरीत बातों के होने से यह समझना चाहिए कि '**मन्त्र-साधना**' में कोई त्रुटि है।

उक्त प्रकार की बाह्य घटनाओं के अतिरिक्त साधक यदि ध्यान दे, तो वह अपनी बुद्धि एवं अन्य ज्ञानेन्द्रियों से भी सूक्ष्म लक्षणों द्वारा अपनी '**मन्त्र - सिद्धि**' को अनुभव कर सकता है। इसके लिए उसे तीव्र भावना से देखने और सुनने की चेष्टा करनी चाहिए। थोड़े ही दिनों में अपने शरीर के भीतर होनेवाली प्रतिक्रियाएँ अनुभव में आने लगेंगी। 'सुषुम्ना' में एक प्रकार का तेज प्रकाश हो जायगा, षट्-चक्र स्पष्ट दिखाई देने लगेंगे। यदि लगन से सारे विचारों को मन से निकाल कर एक चित्त से देखने की चेष्टा की जाए, तो अधिक समय नहीं लगता। पहिले 'सुषुम्ना' में तारे-से छिटके दिखाई देते हैं। शरीर के भीतर कई स्थानों में तारे (प्रकाश के छींटे-से) दृष्टिगत होने लगते हैं। चित्त में अपने आप उत्साह और उल्लास भर जाता है।

उक्त लक्षण तो जाग्रत् अवस्था के हैं। इसी प्रकार रात्रि में सोते हुए भी साधक को सिद्धि की ओर सङ्केत करनेवाले स्वप्न आते हैं। ध्यान रहे ! इन स्वप्नों को या जगते हुए अनोखी बातें यदि हों या दिखाई दें या सुनाई पड़ें अथवा अनुभव में आएँ, तो उन्हें भूल कर भी गुरुदेव के सिवा अन्य किसी से न कहना चाहिए, अन्यथा सिद्धि में रोड़ा अटक जाता है और साधना वहाँ-की-वहीं रह जाती है।

अन्त में यहाँ कुछ स्वप्नों का उल्लेख किया जाता है। जो सिद्धि प्राप्त होने से पहिले प्रायः दिखाई देते हैं—

१ स्वप्न में इष्ट-देव के दर्शन होना। २ प्रसन्न मुद्रा में श्री गुरु-देव का दर्शन होना। ३ गुरु-देव को कुछ आदेश करते हुए देखना। ४ गुरु-देव या इष्ट-देव अथवा कोई सौभाग्यवती स्त्री या कन्या अपने को कोई फूल या फल दे। ५ साफ पूर्णिमा चन्द्र दिखाई दे।

६ गङ्गा जी, सूर्य या शिव-लिङ्ग दिखाई दे। ७ कहीं से पृथ्वी (जमीन, खेत) मिले। ८ नाव में बैठ कर नदी, तालाब या समुद्र के किनारे से दूसरे किनारे जाए। ९ आग की पूजा करे। १० जलती हुई आग दीखे।

११ हवन होता हुआ दिखाई दे। १२ किसी लड़ाई में अपनी जीत होती हुई दिखाई दे। १३ हंस, कोयल या मोर दिखाई दे। १४ किसी सवारी पर बैठ कर कहीं जाए। १५ कन्या, छत्र, रथ, दीपक, आलीशान महल, कमल, हाथी, बैल, फूलों की माला, रुद्राक्ष की माला, समुद्र, हरा पेड़, पर्वत, घोड़ा, शराब, कच्चा मांस या मल-मूत्र दिखाई दे।

१६ सूर्य उगता हुआ दिखाई दे। १७ तारों से भरा हुआ आकाश देखे। १८ किसी बड़ी हवेली में या पर्वत पर अथवा पेड़ पर अपने आपको चढ़ता हुआ देखे। १९ हाथी, घोड़े, बैल पर सवारी करते हुए अपने आपको देखे। २० हवाई जहाज, मोटर, ताँगा, रिक्शा, साइकिल आदि पर अपने आपको सवार देखे।

२१ स्वप्न में शराब पिए या कच्चा मांस खाए। २२ अपने शरीर से मल - मूत्र चुपड़ते देखे। २३ खून से अपने आपको नहाते देखे। २४ दही और चावल खाए। २५ सफेद कपड़े पहिने या सफेद चन्दन अपने शरीर में लगाए।

२६ स्वप्न में सिंहासन, रथ, सवारी, ध्वजा, रत्न, गहने देखे। २७ अपना या किसी दूसरे का राज्याभिषेक होता देखे। २८ स्वप्न में गुरु, देवता, ब्राह्मण, कन्या, गाय, हाथी, घोड़ा, सिंह (शेर), दर्पण, शंख, सारंगी, हारमोनियम, गाने-बजाने के सामान में से कुछ देखे। २९ स्वप्न में पक्वान्न, मिठाई या पान खाए। ३० मोतियों की माला या तेज तपता हुआ सूर्य देखे।

३१ अपने को सफेद साँप काट खाए। ३२ सपने में अपना बन्धन (बँधना) देखे। ३३ स्वप्न में रोए, दौड़े, अपने हाथ-पैर पीटे। ३४ अपने कोई पंखा झले या किसी के खुद पंखा करे। ३५ पानी, दूध या शराब से भरा घड़ा दीखे।

३६ मछली, घी या गोरोचन दीखे। ३७ बिना रोने-पीटने के मुर्दा दिखाई दे। ३८ किसी को वेद-मन्त्रों को बोलता हुआ देखें या मङ्गल गाना-बजाना देखे। ३९ चाबुक या अंकुश या हथियार दिखाई दे। ४० सफेद वस्त्र पहिने, सफेद माला पहिने स्त्री अपने से मिले।

४१ स्वप्न में कोई दही या घी दे। ४२ तालाब के बीच में नाव पर बैठ कर या पानी में अपने आपको घी और खीर मिलाकर खाता देखे। ४३ घोड़ी, गाय, हथिनी को ब्याते हुए देखे। ४४ अपने को कोई आग दे। ४५ घोड़ी, भैंस, शेरनी, गाय या हथिनी को दूध दुहाती देखे।

४६ अपना सिर कटता देखे। ४७ अपनी मृत्यु होते देखें। ४८ स्वप्न में देवता देखे। ४९ स्वप्न में पितर, गाय, ब्राह्मण या राजा देखे। ५० अपने आपको सोने-चाँदी के बर्तन में भोजन करते देखे।

लक्षणों के सामने आते ही चुपचाप दूने उत्साह से साधना में लग जाना चाहिए। ऐसे अवसर पर लापरवाही करने से सब काता-कूता कपास हो जाता है। **एक बात का सदा ध्यान रखे।** भूलकर भी किसी **'सिद्धि'** का अभिमान न करे या किसी को चमत्कार दिखाने को बात भूलकर भी न सोचे—भले अपना कितना ही बड़ा अपमान क्यों न होता हो। **'वाक् - सिद्धि'** मन्त्र-साधना में सफलता की पहिली सीढ़ी है। इसके चक्कर में पड़कर किसी को 'आशीर्वाद' या 'शाप' न देने लगे। नहीं तो हाथ मलकर पछताना पड़ेगा। सारांश यह है कि **'मन्त्र-सिद्धि'** के लक्षणों के अनुभव होते ही साधक को **'पूरी सावधानी'** और **'उत्साह'** के साथ लगन - पूर्वक अपनी **'साधना'** में तत्पर होना चाहिए। इसके लिए साधक को **'मौन व्रत'** या **'कम-से-कम बोलने का अभ्यास'** अति सहायक सिद्ध होता है।

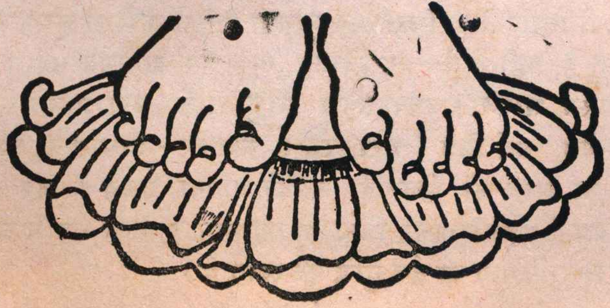

'मन्त्र-जप' अर्थात् ईश्वर की भावना

'प्रणव-जप' रूपी ईश्वर-प्रणिधान

'ईश्वर'-पदार्थ है। उसके शब्द-मय चिन्तन का सङ्केत **'ॐ-कार'** है। ईश्वर-सम्बन्धी सभी शब्द-मय चिन्तन का सङ्केत 'ॐ' द्वारा ही शास्त्रों में किया गया है। 'ॐ' की इस मान्यता का मुख्य कारण यह है कि **'प्रणव'** के जप से चित्त की स्थिरता जितनी सरलता से होती है, उतनी सहजता अन्य किसी शब्द के जप में अनुभव नहीं होती।

'ॐ' के सम्बन्ध में 'श्रुति' का वचन है—**एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।**

अर्थात् परमार्थ-साधन के विविध आलम्बनों में 'प्रणव' ही श्रेष्ठ और परम आलम्बन है।

'भाष्य-कार' कहते हैं—**प्रणवस्य जपः, प्रणवाभिधेयस्य च ईश्वरस्य भावना, तदस्य योगिनः प्रणवं जपतः, प्रणवार्थं च भावयतश्चित्तम् एकाग्रं सम्पद्यते। तथा चोक्तम्—स्वाध्यायाद् योगमासीत्, योगात् स्वाध्यायमनेत् (स्वाध्यायमासते)। स्वाध्याय-योग-सम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते।**

अर्थात् 'प्रणव' का जप और उसका अभिधेय ईश्वर की भावना है। इस प्रकार 'प्रणव' में जप-शील और प्रणवार्थ-भावना-शील योगी का चित्त एकाग्र होता है। कहा भी है—स्वाध्याय से योगारूढ़ होगे, योग से स्वाध्याय का उत्कर्ष करोगे। तब 'स्वाध्याय' और 'योग'-रूपी सम्पत्ति द्वारा परमात्मा प्रकाशित होंगे।

भावार्थ यह है कि वाच्य-वाचकत्व जिसे ज्ञात है—'प्रणव' के स्मरण-मात्र से ही जिनके मन में सर्वज्ञता आदि गुणवाले ईश्वर की स्मृति आ जाती है, वे ही वास्तविक योगी हैं। उनके द्वारा जो **'प्रणव का जप'** एवं उसकी अर्थ-चिन्ता होती है, वही चित्त को स्थिर करनेवाला 'ईश्वर-प्रणिधान' नामक साधन है। 'स्वाध्याय' अर्थात् निरन्तर 'प्रणव-जप' से योग या चित्त की एकाग्रता होती है। 'योग' द्वारा अर्थात् चित्त की एकाग्रता से लब्ध अन्तर्दृष्टि के द्वारा सूक्ष्म अर्थ का ज्ञान होकर 'स्वाध्याय का उत्कर्ष' होता है। सूक्ष्म - तर अर्थ के प्रति लक्ष्य रखकर पुनः - पुनः जपन - शील होना ही 'स्वाध्याय' है। इस प्रकार **'स्वाध्याय'** के द्वारा **'योग'** का एवं **'योग'** के द्वारा **'स्वाध्याय'** का अभ्यास होने से परमात्मा प्रकाशित होते हैं अर्थात् साधक को आत्म - ज्ञान की प्राप्ति होती है। 'प्रणव' और 'गुरु - मन्त्र' में कोई भेद नहीं है।

'शास्त्र' कहते हैं—

यः सर्व-भूत-चित्तज्ञो, यश्च सर्व - हृदि स्थितः। यश्च सर्वान्तरे ज्ञेयः, सोऽहमस्मीति चिन्तयेत्॥

अर्थात् जो सभी प्राणियों के चित्तों को जानता है, जो सभी के हृदय में वर्तमान है, जो सभी के अन्तर में जानने की वस्तु है, वही मैं हूँ—यह चिन्तन 'मन्त्र-जप' के समय सदा किया करे।

शम्भोः प्रणव-वाच्यस्य, भावना तज्जपादपि। आशु सिद्धिः परा प्राप्या, भवत्येव न संशयः।

एकं ब्रह्म - मयं ध्यायेत्, सर्वं विप्र ! चराचरम्। चराचर - विभागं च, त्यजेदहमिति स्मरन्॥

अर्थात् प्रणव का वाच्य जो ईश्वर है, उसकी भावना प्रणव के जप से मिलकर ही रहती है, इसमें सन्देह नहीं। हे विप्र ! सभी चराचर विश्व को ब्रह्म-मय 'एक' के रूप में ध्यान करे और 'अहम्' का स्मरण करता हुआ चराचर-विभाग या द्वैत-बुद्धि को त्याग दे।

(आवरण-पृष्ठ २ का शेषांश)

उस दिन वे स्वामी जी, तुझको महा-कालिका बतलाते थे !
विकटास्या, अङ्गार-दृगा, नर - मुण्ड - मालिनी समझाते थे !
माँ ! इन पढ़े-लिखों की अक्कल क्या बिल्कुल मारी जाती है ?
स्रवित-पया, वत्सल, मुग्धा, तू इनको भीषण दिखलाती है !
मुझको तो, भोली माँ मेरी ! कितनी प्यारी लगती है तू ।
सच तो कह, इन ज्ञान-गर्वियों को क्या सचमुच ठगती है तू ?

तेरी लीला तू ही जाने, मुझको क्या, जञ्जाल बढ़ाऊँ ?
मुझको इतना सिखला दे, माँ ! क्या करके मैं तुझे रिझाऊँ ?५

मां ! बालक का रोना-धोना, या कि मचलना, 'हा-हू' करना ।
कूद-फाँदना, कान-फाड़ना, नट-खट-पन या ऊधम करना ।।
सिर पर चढ़ना, पकड़ खींचना, कस-कस करके मुक्के देना ।
पीते - पीते दूध पयोधर, काट दँतुलियों से ही लेना ।।
सच तो कह, है कौन क्रिया, जो मां को नहीं रिझा है पाती ?
बच्ची ही रहने दे मुझको, फिर क्यों आडम्बर सिखलाती ?

आडम्बर से ही खुश है, तो कौन बता आडम्बर लाऊँ ?
आकर मुझको समझा दे, मां ! क्या करके मैं तुझे रिझाऊँ ?६

मैं तो गोदी में खेलूंगी, 'दुर्गा' ढोंगों में न सनेगी ।
रूठ गई गर तेरी मुन्नी, मुश्किल से तो पुनः मनेगी ।।
मुझको तङ्ग न कर तू, अम्मा ! सचमुच रूठ जाऊँगी तुझसे ।
तेरे जप-तप मुद्रा-फुद्रा—कुछ भी होगा कभी न मुझसे ।।
मुझे गोद ले दूध पिला दे, अब जो ज्यादा दुःख ही देगी ।
नथ को पकड़ खींच लूंगी मैं, फिर तू मेरा क्या कर लेगी ?

बातों में बहकाया मुझको, जो न दूध को रोर मचाऊँ ।
तू ही मुझको रिझा न ले, मां ! मुझको क्या, जो तुझे रिझाऊँ ?७

रजि० सं० ३२६८१/५७] जनवरी, १६६२ [रजि० सं० ए० डी० ६६
सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक : श्र ऋतशील शर्मा, परा वाणी प्रेस, प्रयाग—२११००६

पूजा-रहस्य

हिन्दुओं की पूजा का व्याख्यात्मक अनूठा विवरण

मूल्य १५-०० रु०

सचित्र
मुद्राएँ एवम् उपचार

हिन्दुओं की पूजा में प्रयुक्त होनेवाली मुद्राओं एवं पूजोपचारों(आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, नैवेद्य, ताम्बूल, प्रदक्षिणा आदि) का प्रामाणिक वर्णन ।

मूल्य १०-०० रु०

सविधि
श्री कुण्डलिनी साधना

षट्-चक्रों एवं कुण्डलिनी-योग का सचित्र विवेचन

मूल्य १५-०० रु०

मन्त्र-कोष

पञ्च-देव (गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव, भगवती दुर्गा), दश-महा-विद्या (काली, तारा, श्रीविद्या आदि) तथा विविध देवताओं के मन्त्रों का अनुपम कोष, बीज-कोषादि

मूल्य ५५-०० रु०/सजिल्द मूल्य ६५-०० रु०